ॐ

भक्ति

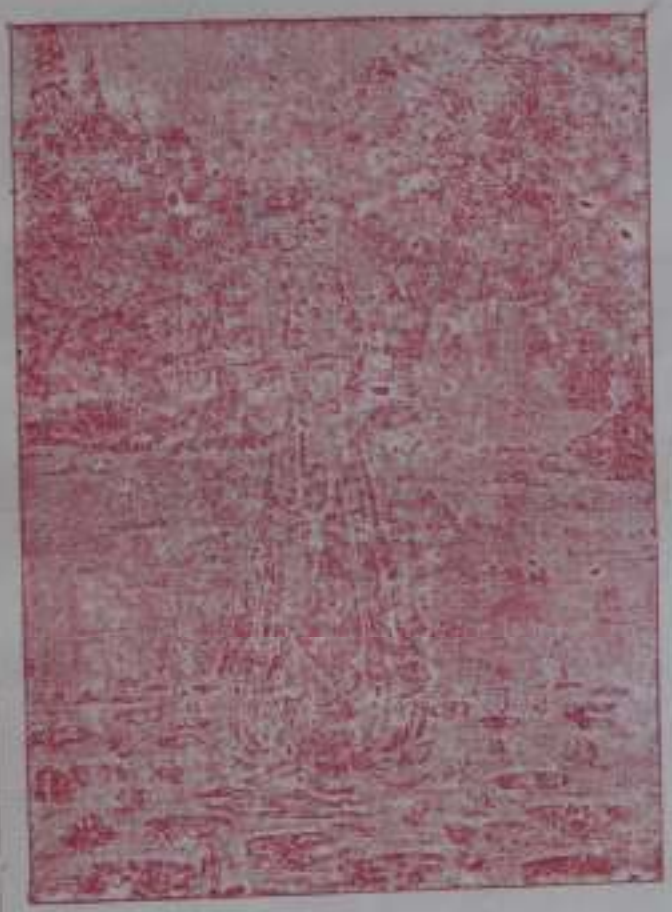

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
आत्मैवमात्मानं युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती

वैशाख सम्वत् १९८५

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षा और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा दोनों का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देनेवाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अप्रचलित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नामसे होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ
१. मंगलाचरण	२३२
२. भक्तों के चरित्र [सम्पादक	२३७
३. माखन लीला	२३९
४. श्री कृष्ण चरित्र [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी]	२४१
५. ईशोपनिषद्	२४५
६. महात्माओं के वचन	२४६
७. सत्यवान सावित्र्याख्यान [ले० श्रीमती सूरज देवी	२४९
८. मानव धर्मसार	२५३
९. आयुर्वेद शिक्षा [ले० श्री पं० रामरत्नलाल जी वैद्य शास्त्री	२५७
१० तरङ्गिणी शान्तिदायिनी [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी	२५८
११. भजन	२६०
१२. गो मीमांसा [ले० श्री० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री जबलपुर	२६२

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः।"

वार्षिक चन्दा २)

भक्ति

एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैशाख पूर्णिमा सं० १९८५। { अङ्क ८

मङ्गलाचरण।

सर्गस्थितिप्रलयहेतुमचिन्त्यशक्तिं विश्वेश्वरं विदितविश्वमनन्तमूर्तिम्।
निर्मुक्तबन्धनमपारसुखाम्बुराशिं श्रीवल्लभं विमलबोधघनं नमामि॥

मैं उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के हेतु, अचिंत्यशक्ति, विश्वेश्वर, विश्व के जानने वाले, अनंत-मूर्ति, बंधनों से रहित, अपार सुख-सागर और विमल ज्ञानघन श्रीविष्णु जी को नमस्कार करता हूं।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं,
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

जैसे निद्रादोष से स्वप्न का जगत् बाहर प्रकट हुआ सा प्रतीत होता है इसी प्रकार जो पुरुष दर्पण में दृश्यमान नगरी के समान अपने अंदर स्थित इस जगत् को माया से बाहर प्रकट हुवा सा देखता है और जो ज्ञान के समय अद्वितीय आत्मा को ही साक्षात्कार करता है, उसी श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

बीजस्यान्तरिवांकुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुन-
र्मायाकल्पितदेशकालकलना वैचित्र्यचित्रीकृतम् ।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

यह जगत् बीज के अंदर अङ्कुर के समान पहिले निर्विकल्प था, फिर माया से कल्पित देश काल आदि की नानाविध कल्पना द्वारा अनेक प्रकार से इस का विभाग करके जो परमात्मा, मायावी अथवा महायोगी के समान अपनी इच्छा से इसे उत्पन्न करता है, उसी श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते,
साक्षात्तत्त्वमसीतिवेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान् ।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भो निधौ,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ३ ॥

जिस परमेश्वर का स्वरूपभूत सद्रूप चैतन्य ही असत् आकाशादिक पदार्थों को प्रकाशित करता है, जो अपने आश्रितों को साक्षात् "तत्त्वमसि" इस वेदवचन से बोध कराता है और जिसके साक्षात्कार से संसारसमुद्र में पुनरावृत्ति नहीं होती, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार होवे।

नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं,
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते ।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तंजग-
त्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

अनेक छिद्रोंवाले घड़े में स्थित महादीप की प्रभा के समान प्रकाशमान जिस परमात्मा का ज्ञान, चक्षु आदिक इंद्रियों द्वारा बाहर फैल रहा है और "मैं जानता हूं" इस प्रकार प्रतीत होते हुए जिस परमात्मा से यह सारा जगत् प्रतीत हो रहा है, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलं बुद्धिं च शून्यं विदुः,
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमितिभ्रान्ता भृशं वादिनः।
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

वादी लोग, स्त्री बालक अंधे और मूर्ख के सदृश अत्यंत भ्रांत होकर देह, प्राण, इंद्रिय, चञ्चिक ज्ञान और शून्य को ही "अहम्" (मैं) इस प्रतीति का विषय समझते हैं। इस प्रकार माया की शक्ति से कल्पित जो देहादिकों में आत्मा का भ्रम है, उस भ्रम को नाश करने वाले उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति महादेव को यह नमस्कार हो।

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्,
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान्।
प्रागस्वाप्समितिप्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

ज्ञान के साधन चक्षु आदिक इंद्रियों के लीन होने पर माया से आच्छादित होकर सोया हुआ जो पुरुष, राहु से ग्रसे हुए सूर्य और चंद्र के समान सत्तामात्र प्रतीत होता था और जागते के समय "मैं पहिले सो गया था" इस प्रकार स्मरण करता है, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार है।

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि,
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो भद्रया मुद्रया,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

जो बाल्य आदि, जाग्रत् आदि तथा सर्व अवस्थाओं को बदल जाने पर भी बदलता नहीं है "मैं हूं"

इस प्रकार अंदर सदा स्फुरण होता है, और जो उस अपने रूप को अपने भक्तों के प्रति सुंदर प्रक्रिया से प्रकट करता है, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसम्बन्धतः,
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः।
स्वप्ने जागृति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामित-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

जो यह पुरुष, स्वप्न अथवा जाग्रत में माया से भ्रम को प्राप्त हो कर कार्य कारण रूप तथा स्वस्वामिभावरूप, शिष्य आचार्यरूप तथा पिता पुत्र आदिरूप भेद से युक्त जगत् को देखता है, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (महादेव) को यह नमस्कार होवे।

भूरम्भास्यनलोऽनिलोम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत् किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभो-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

पृथिवी, जल अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्रमा और जीव, ये स्थावर जङ्गमरूप जिस की आठ मूर्तियां प्रकाशमान हैं और विचार करने से जिस व्यापक परमात्मा से भिन्न कोई पदार्थ प्रतीत नहीं होता, उस श्रीगुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति (शिव) को यह नमस्कार हो।

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन् स्तवे,
तेनास्य श्रवणात्तथार्थमननाद्ध्यानाच्च संकीर्तनात्।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः,
सिद्ध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम्॥

जिस कारण से यह सर्वात्म-भाव इस स्तोत्र में स्पष्ट कर दिया गया है इस लिए इस स्तोत्र के श्रवण मनन, ध्यान और कीर्तन करने से सर्वात्मभावरूप महाविभूति से युक्त ईश्वरपन स्वतः प्राप्त हो जाता है, अर्थात् अणिमादिक आठ सिद्धियां बिना प्रतिबंध के सिद्ध हो जाती हैं।

भक्तों के चरित्र।

धन्ना जी।

भारत धर्म प्रधान देश है, यहां माया एक सीमा तक आदर पा सकती है, वह ऋषियों की संतान की सर्वेसर्वा नहीं बन सकती। माया के अटूट भंडार से भरपूर पाश्चात्य देशों की समता में निर्धन भारत में अब भी कितने ही ऐसे त्यागी महात्मा मिलेंगे जिन्होंने अपने ज्ञान के बल से इस माया से मुंह मोड़ लिया है और जो वास्तव में इस से कुछ लाभ न समझ कर इस को झंझट समझते हैं, यह दूसरा प्रश्न है कि उन्होंने त्याग के साथ में कर्तव्य को भी त्याग दिया है कि जिस के बिना केवल त्याग मनुष्य के सब प्रकार के मनोरथों को सफल करने में असमर्थ है। भला पाश्चात्य जगत इन बातों पर क्या कर सकता है जहां होटल विराजमान हों और धार्मिक उपदेशकों का वेतन नियत हो। इस प्यारे भारत में जिस में बड़े से बड़े राजा और धनाढ्य से धनाढ्य व्यक्तियों का यदि वह धर्म से शून्य हैं तो कोई राग नहीं गाया जाता और यदि गाया भी जाता है तो इस ढङ्ग से कि ऐसा राजा बनने या राज्य पाने की कोई इच्छा नहीं करता। फिर धर्म में भी यहां भगवान् के प्यारों के गीत बड़े प्रेम से गाए जाते हैं यह भक्ति प्रधान देश है। इसी पवित्र भारत में वर्तमान बीकानेर राज्यान्तर्गत धन्ना जी का जन्म एक जाट के घर हुवा था। यह धन्ना जी भक्त हुए हैं भक्त से बड़ा कौन है, भक्त से बड़ा तो भगवान् ही है। सारे उत्तरी भारत में धन्ना जी के गीत गाए जाते हैं। जिन हिन्दुओं में कुछ भी हिन्दुत्व शेष है इन के बालक भी जानते हैं और गाते हैं।

धन्ना भगत को खेत उगायो।

उन धन्ना जी के जीवन चरित्र को लिखने और कहने में कौन समर्थ है उनको तो भगवान ही जानते हैं या कोई भक्त जन जान सकता है हम तो यह जानते हैं कि उन के जीवन के ध्यान मात्र से हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण शुद्ध होने की ही क्या बात है उस के सुनने से आनंद आता है। आइए आप भी इस आनन्द में भाग लीजिए।

कथा।

धन्ना जी बालकपन में बड़े सरल स्वभाव, दयालु और सच्चे थे। सत्य सफलता के लिए प्रथम सोपान है। सत्य बिना विश्वास और श्रद्धा कहां और श्रद्धा के बिना वह कहां। वह तो श्रद्धा व विश्वास में है। सत्य से हीन पढ़े लिखे भाई अज्ञान वश यह समझते हैं कि बिना पुस्तकों के पढ़े उस का ज्ञान नहीं हो सकता परन्तु यह भूल है! हां बिना ज्ञान के तो वह नहीं मिलता परन्तु वहां तो उस ज्ञान की आवश्यकता है जिस का नाम सत्य है और वह ज्ञान भी पूर्ण निश्चय पूर्वक दृढ़ किया हुआ और व्यवहार में लाया हुआ। धन्ना जी ऐसे ही सत्यधारी थे। तब ही तो उन को मिल गया, और मिलने को गया ही कहां है परन्तु दोष यह है कि जानते हैं परन्तु मानते नहीं फिर बिना माने व्यवहार कैसे बने और बिना व्यवहार फल कहां से मिले?

कहते हैं जब यह बालक थे तब इनका ब्राह्मण इन के घर आया वह ब्राह्मण श्री सालगराम जी की

पूजा किया करता था। यह बालक थे कुतूहल के रूप में पूछने लगे यह तुम क्या करते हो और यह पत्थर से क्या है? ब्राह्मण बोला यह भगवान् हैं और मैं इनकी पूजा करके इनको भोग लगाता हूं। उसको भी प्रसाद मिला था। उस ने अधिक बात न पूछी मन में निश्चय कर लिया कि भगवान् की पूजा करके उनको भोग लगाऊंगा। वह सच्चे थे विश्वास कर लिया उन के लिए हाथी के दांत एक ही प्रकार के थे। जब धन्नाजी सालिगराम को मांगने लगे तो वह घबराया कि सालिगराम जी को कैसे दूं? उसे क्या पता था कि तेरे शिर पर तो इनका भार है इनका सच्चा अधिकारी तो यही है। उसने थोड़ी देर में एक काले पत्थर की बटिया उनको दे दी। उस बटिया को पाकर उनको अपार आनन्द हुवा। उन के लिए पल २ भारी होगया। वह बाट जोहने लगे कि कब पूजा का समय हो और खूब भोग लगाऊं। उन्हों ने रात चिन्ता और उत्साह में काटी। सवेरे उठ कर घर में जो उत्तम से उत्तम पदार्थ उनको मिल सकते थे संग्रह किए और बड़े प्रेम से हिला घुलाकर, बड़ी श्रद्धा भक्ति व प्रेम से भगवान् को भोग अर्पण किया। थोड़ी देर होने पर जब भगवान् ने भोग स्वीकार नहीं किया तो सब प्रकार के साधन बर्तव में लाया। लाड, प्यार, खुशामद, हंसी जब सब शस्त्र बेकार हो चुके तो समझ लिया ठाकुर जी प्रसन्न नहीं होते ठाकुर जी बड़े कठोर हैं उनको तालाब में फैंक दिया और समझ लिया कि जीवन व्यर्थ है इस को त्याग देना चाहिए। यह निश्चय करके भगवान् की रट लगाते हुए मौन धारण करके गिर पड़े। घर वालों ने बहुत समझाया परन्तु इनका एक ही उत्तर था कि यदि ठाकुरजी भोग स्वीकार करेंगे तो खाऊंगा वरना इसी तरह प्राण जावेंगे। इसी प्रकार कई दिन बीत गए अन्त में माता फिर एक दिन सवेरे ही बाजरे की रोटी और मक्खन दही ले कर गई और बोली धन्ना तू बावला हो गया है उठ कर रोटी खाले नहीं तो मर जायगा। उनका एकही उत्तर था भगवान् का भोग लगा हुआ प्रसाद खाऊंगा, सुनकर चुप हो गई और भोजन रख कर चली गई। भगवान् भक्त के इस कष्ट को न सह कर आप पधारे। वही पत्थर की बटिया ताजार में से आ विराजमान हुई और उनमें से भगवान् बालक के रूप में प्रगट हुए धन्ना जी के आनन्द की सीमा न रही। भगवान् बड़े प्रेम से भोग लगाने लगे। जब यह आधी रोटी खा चुके तो धन्नाजी ने हाथ मारा और बोले कि "आप ही आप खाए जाता है मुझे कुछ भी नहीं देता मैं कई दिनका भूखा हूं"। भगवान् हंसे और आधी रोटी उसे देदी।

अब नित्यही भगवान् आप खाते और धन्ना जी को खिलाते! जब बहुत दिन हो गए तो भगवान् बोले कि तुम्हारी रोटी मुफ्त में खाते हैं कुछ काम करवा लिया करो। वह बोले दोनों मिल कर गाएं चराया करेंगे। फिर क्या था पूरा साथ हो गया। साथ ही खेलते और साथ ही खाते। बुद्धिमान् पुरुष कहेंगे कि यह असम्भव है परन्तु हम उन से कहते हैं कि भाई यह चाहे पागलपन ही हो और चाहे यह केवल विचार की रचना हो परन्तु इस पागलपन में और इस विचार में कितना आनन्द है। अपना अत्यंत प्रेमी रात दिन अपने साथ रहे और अपना सारा फिकर छूटकर केवल शरीर मात्र से व्यवहार बनता रहे इस से बढ़ कर क्या चाहिए? आखिर योग भी विचार ही का नाम है और श्रुति के

अनुसार तो यह समस्त जगत् विचार का ही रूप है फिर इस से उत्तम किस विचार की मनुष्य को आवश्यकता है ?

कुछ दिन बाद मूर्ति देने वाले ब्राह्मण देख आए और बोले पूजा पाठ का क्या हाल है ? धन्ना जी बोले 'पूजा पाठ किस की करूं वह आप ही हर समय साथ खेलता है। पहले तो उस ने बड़ी कड़ाई की परंतु अब तो सीधा होगया है !" ब्राह्मण सुन कर आश्चर्य करने लगा और कहा कि हम को भी तो दिखा। धन्ना जी बोले। "यह देख मेरे पास बैठा है" ब्राह्मण बोला 'मुझे तो दिखाई नहीं देता" फिर धन्ना जी ने प्रार्थना की कि महाराज इस को दर्शन दो उसी समय भगवान ने हंसते हुए ब्राह्मण को दर्शन दिए। उसका कल्याण हो गया सच्ची भक्ति की प्राप्ति हुई।

धन्ना जी को भगवान ने आज्ञा दी कि रामानंद जी को गुरु धारण करना चाहिए। धन्ना जी कबीर जी के पास आए और उन को साथ ले रामानंद जी के पास जाकर उन के शिष्य बन गए। रामानंद जी ने गुरु मंत्र देकर साधु सेवा करने की आज्ञा दी और बिदा कर दिया।

एक दिन धन्ना जी के घर साधु आगए परंतु भोजन की सामग्री घर में न थी केवल बीज बोने के लिए कुछ गेहूं रक्खे थे। धन्नाजी ने वह गेहूं साधुओं को बांट दिए और खेत वैसे ही छोड़ दिया। भगवान की दया से धन्ना जी के खेत में सब से अच्छा अन्न उत्पन्न हुआ तब लोगों ने आकर जिकर किया और यह देखने गए तो देखा कि लहलहाती खेती खड़ी है। बीज व वृक्ष सब उन के आधीन हैं वह चाहे जो कर सकता है। धन्ना जी की भक्ति विचित्र थी। अब भी ऐसे ही भक्तों की आवश्यकता है। संसार तर्क बुद्धि से शुष्क और नास्तिक हो चला है आनन्द के स्थान में दुःख की दीवारें चारों तरफ खड़ी करली हैं। माया के किले में फंस कर राग व द्वेष की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं और इन बेड़ियों को जेवर व इस कैदखाने को महल समझ लिया है। अब फिर पवित्र भक्ति की शीतल गंग धारा के बहने की आवश्यकता है। परन्तु उस भक्ति के लिए सत्याचरण की आवश्यकता है। भगवान् धन्ना जी का सा हृदय सब को प्रदान करें।

सम्पादक

मालिन लीला।

मधुभरे नैन रसीलेरी मालिन ॥ टेक ॥

कहो कौन है तात तुम्हारो,
कौन तुम्हारी माईरी मालिन।
क्या है सुन्दरी नाम तिहारो।
कौन गांव से आईरी मालिन ॥ १ ॥

अचल प्रेम है तात हमारो,
भक्ति हमारी माईरी मालिन।
श्याम सखी है नाम हमारो,
धुर गोकुल से आईरी मालिन ॥ २

तुम्हरो रूप देख मन उमग्यो,
सुन मालिन की जाईरी मालिन।
हम लेंगे सब वस्तु तिहारी,
क्या क्या वस्तु लाईरी मालिन ॥ ३ ॥

कित मथुरा कित गोकुल नगरी,
कित बरसाने आईरी मालिन।
कौन बतायो नाम हमारो,
किन यह ठौर बताईरी मालिन ॥ ४ ॥

तीन भुवन में सुयश प्रगट है,
और तुम्हरी ठकुराईरी मालिन।
राधे नाम रूप की आगरि,
श्री वृषभानु की जाईरी मालिन ॥ ५ ॥

चंचल चतुर सुघरि तू मालिन,
हम जानी चतुराईरी मालिन।
फूलन हार बने अति सुंदर,
और कहो क्या लाईरी मालिन ॥ ६ ॥

जो रुचि होय सो ले मेरी प्यारी,
बेर भई मोहे आई री मालिन।
बेर २ तू जन कर मालिन,
देहुं माल बनाईरी मालिन ॥ ७ ॥

हीरे लाल रत्न मणि माणिक,
भूषण बसन मंगाईरी मालिन।
बड़े घरन की मालिन हूं मैं,
धन की रुचि कछु नाहींरी मालिन ॥ ८ ॥

मैं सौदागर प्रेम रत्न की,
और न कछु सुहाईरी मालिन।
फूल फुलैल की बेचनहारी,
कहा अधिक इतराईरी मालिन ॥ ९ ॥

बेहु २ फूल करत हैं कुंजन में,
हम पै करत बड़ाईरी मालिन।
सुकृत जन्म के फलते भामिन,
यह मेरे फूल सुहाईरी मालिन ॥ १० ॥

पच पच हार रहे सुर नर मुनि,
ऐसे फूल न पाईरी मालिन।
जिन फूलन को खोजि थकित भये,
सुर नर पति मुनि राईरी मालिन ॥ ११ ॥

ऐसे फूल कहो मृग नयनी,
कौन बाग से लाई री मालिन।
त्रिभुवन पति जगदीश दयानिधि,
नंद कुंवर मधुराईरी मालिन ॥ १२ ॥

वा मोहन के बाग सों प्यारी,
नवल फूल चुनलाईरी मालिन।
आज की रैन रहो घर हमरे,
भोर भए उठजाईरी मालिन ॥ १३ ॥

सांची प्रीति देख प्यारे की,
रैन को सैन ठहराई री मालिन।
यह छबि निरखि मगन भये सुरनर,
दास चरण बलिजाई री मालिन ॥

श्रीकृष्ण चरित

गतांक से आगे।

पूतना वध ॥

कंस योगमाया के वाक्य का स्मरण करके नित्य चिन्तित रहने लगा। इसी प्रकार चिन्ता में कई दिवस व्यतीत हो गए। निदान! एक दिन उसने अपने सब मन्त्रियों को बुलाया और उनको योगमाया द्वारा कहा गया समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। तब अरिष्टासुर तृणावर्त्त आदि दैत्यों ने कंस से कहा कि "आप किसी प्रकार की चिंता न करिये। आप हम को अपने राज्यमें दश पन्द्रह दिवसों के भीतर जो बालक पैदा हुए हैं उनके वध की आज्ञा दीजिए। हम आज से समस्त बालकों का संहार कर डालेंगे। उन बालकों में जो आप का शत्रु है वह भी अवश्य मर जायगा। हे महाराज! भूमण्डलान्तर्गत समस्त देवता भी आप के पराक्रम के समक्ष में कुछ भी नहीं हैं। क्षीर सागर में शेष शय्या पर सोया हुवा विष्णु तो आलस्य वशात् आप का अहित साधन करने को समर्थ हो ही नहीं सकता। विष पान करने से उद्विग्न चित्तवाले शंकर को तो अपनी ही सुधि नहीं है और बेचारे ब्रह्माको भी सृष्टि रचना से अवकाश ही नहीं मिलता इसी लिए तो हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु और रावणादिक असुरों ने देवताओं की खूब दुर्दशा की और देवता उनका कुछ भी नहीं कर सके। फिर आप ही बतलाए कि हम लोगों को भी इन से क्या भय हो सकता? परन्तु फिर भी शत्रु और सर्पको छोटा नहीं समझना चाहिए। अतः आप हम को आज्ञा दीजिए कि हम सब नवजात बालकों का संहार कर डालें। तामस स्वभाव वाला और मलीन अन्तःकरण वाला तथा मृत्यु जिस के शिर पर खेल रही थी ऐसे कंस ने मन्त्रियों को बालकों के वध की आज्ञा दे दी।

अब हम पाठकों का ध्यान नन्दजी की ओर आकर्षित करते हैं। सर्वगुणसम्पन्न पुत्र के उत्पन्न होने पर नन्दजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने वेद-पाठी ब्राह्मणों को बुलाकर स्वस्ति वाचन कराया। फिर बालक का जातकर्म संस्कार कराया। दक्षिणा में सुन्दर दो लाख गौवें दान में दीं। क्योंकि:-

कालेन स्नान शौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया
शुध्यन्ति दानैः संतुष्टया द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया

काल से पृथ्वी पदार्थ शुद्ध होता है, स्नान से शरीर, धोने से वस्त्र, संस्कार से गर्भ, तप से इंद्रियां, यज्ञ से ब्राह्मण, सन्तोष से मन, आत्मविद्या से आत्मा और दान से धन शुद्ध होता है। अतः नन्द-राय जी ने प्रचुर धन ब्राह्मणों को दान में दिया। जब ग्वाल बालों को विदित हुवा कि नन्दराय जी के पुत्र उत्पन्न हुवा है तो सब मिल कर नन्द जी के घर बधाई देने गए। नन्द जी इस आनन्द मंगल को देख कर अङ्ग में फूले नहीं समाते थे। पश्चात् सब गोपियां भी नन्दराय जी के घर भगवान के दर्शनों को गईं। उस समय की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है। नन्दराय जी पुत्र के कल्याणार्थ

बार बार विष्णु भगवान की आराधना करते थे। वह बारम्बार वरदान मांगते थे कि "हे भगवन ! मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान दो कि यह मेरा बालक चिरंजीवि रहे। इस प्रकार आनन्द मंगल में बहुत से दिन व्यतीत होगए।

एक बार नन्दराय जी वार्षिक कर लेकर मथुरा में गए। वसुदेव जी नन्द जी का आगमन सुन कर उनसे मिलने को गए। वसुदेव नन्द जी बहुत प्रेम से आपस में मिले। दोनों मित्रों ने आपस में एक दूसरे से कुशल क्षेम पूछी। पश्चात् वसुदेव जी ने नन्दजी से कहा कि "हे मित्र! तुमने कंसको वार्षिक कर दे दिया है। अब तुम्हारा यहां अधिक रहना अच्छा नहीं क्योंकि कंसने मृत्यु के भय से सब नव जात बालकों के वधका निश्चय किया है। अतः आप शीघ्र ही गोकुल में जाने का उद्योग करें। वसुदेव जी की सम्मति से नन्द जी ने तुरन्त मित्र से विदा मांगी और गोकुल को प्रस्थान किया।

इधर कंस की आज्ञा से मन्त्रियों ने पूतना नामक राक्षसी जोकि भांति २ के रूप बनाने में बहुत चतुरथी बालकों के वध करने के लिये नियुक्त की। पूतना को कंस ने भी बुलाकर भली प्रकार समझाया और कहा कि तुझे और बालकों से तो अधिक भय नहीं है नन्द जी के घर जो बालक पैदा हुवा है यदि तू उसे मार देगी तो तुझको मुंह मांगा पुरस्कार दूंगा। पूतना कंस की बात सुनते ही गोकुल की ओर गई। मार्ग में उस ने मनमें विचार किया कि गोपियों का वेष बनाकर बधाई देनेके लिये नन्दजी के घर जाकर छल कपट से बालक को मारने का प्रयत्न करूंगी। तत्पश्चात् उस ने सुंदर गोपी का रूप धारण किया और नन्द जी के घर में पहुंची। श्री कृष्ण तो अन्तर्यामी थे। उन्होंने पूतना को आई हुई देख कर हंस कर अपनी आंखें मीचलीं। तब पूतना ने बालक को इस प्रकार से गोदी में उठा लिया जैसे कोई सोते हुए सांप को रस्सी समझ कर उठा लेता है। तब एक गोपी ने पूछा कि तू कौन है तो उस बाल घातिनी ने कहा कि मैं देवांगना हूं तुम्हारे यहां बधाई देने के लिए आई हूं। इस सुंदर बालक को देख कर जी में आया कि इसे खिलाऊं अतः गोदी में उठा लिया। तत्पश्चात् उस राक्षसी ने विष लगा हुवा अपना स्तन उस बालक के मुंह में दे दिया। तब श्रीकृष्ण चन्द्र दोनों हाथों से उस के स्तनों को पकड़ कर प्राण सहित पी गए। पूतना बड़े जोर से चिल्लाई और थोड़ी देर में हाथ पांव पीट कर मर गई। श्री कृष्णचन्द्र उसके वक्षःस्थल पर निःशंक होकर खेलने लगे। गोपियां पूतना के विशाल शरीर को देख कर अत्यन्त घबड़ाईं और श्रीकृष्ण चन्द्रजी को बहुत प्यार किया और सब भगवान से इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं:-

अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू,
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्य।
हृत्केशवस्त्वदुरईशइनस्तु कण्ठं,
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरःनम् ॥

हे यशोनन्दन ! अजन्मा भगवान तुम्हारे चरणों की रक्षा करें- अणिमान भगवान तुम्हरे टखनों की रक्षा करें, यज्ञ भगवान तुम्हारे जंघाओं की रक्षा करें, अच्युत भगवान तुम्हारी कटि की रक्षा करें। हयग्रीव भगवान तुम्हारे उदर की रक्षा करें, केशव भगवान तुम्हारे हृदय की रक्षा करें, विष्णु भगवान्

तुम्हारी भुजाओं की रक्षा करें, ईश्वर तुम्हारे ललाट की रक्षा करें। इस प्रकार अनेक प्रकार से भगवान् की प्रार्थना करके श्रीकृष्ण चन्द्र को दूध पिला कर घर में सुला दिया। इसी अवसर में नन्द जी भी मथुरा में आगए। उन्होंने मार्ग में पड़ी हुई पूतना को देख कर बड़ा आश्चर्य किया। और मनही मन वसुदेव जी की प्रशंसा करने लगे।

भगवान् की माया बड़ी विचित्र है यह साधारण मनुष्य की तो गिनती ही क्या बड़े २ योगियों की समझ में भी नहीं आती। जिस पूतना ने कपट से दूध पिला कर विष से भगवान् को मारना चाहा था उसको माता की भान्ति मोक्ष पदवी प्रदान की।

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने।
यच्छन्पियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा॥

फिर श्रद्धा और भक्ति करके आनन्द कन्द श्रीकृष्णचंद्र की माता अर्थात् अत्यन्त प्रिय पदार्थों की देने वाली मुक्ति को मनुष्य प्राप्त करें तो आश्चर्य ही क्या है। अपने भक्त जनों के हृदय में वास करने वाले वन्दित, देवताओं के भी पूजनीय और देवोंके अधिपति ब्रह्मा भी जिन को प्रणाम करते हैं ऐसे परम पवित्र चरणारविन्दों से पूतना का अङ्क दबा कर स्तन पान करके मोक्ष पदवी प्रदान की।

शकटासुर वध।

पूतना के वध से अद्भुत बालक श्रीकृष्ण के प्रताप को देख कर कंस ने यह निश्चय कर लिया कि हो न हो तेरे वध करने वाला बालक यही है। तब कंस ने शकटासुर दैत्य को श्रीकृष्ण के वध की आज्ञा दी। शकटासुर ने गुप्त रूप से अपनी देह को नन्द जी के शकट में व्याप्त किया। एक समय नन्द जी तो बन में गौओं के संग गए हुए थे तब यशोदा श्रीकृष्ण को उसी शकट के नीचे सुला कर जल लेने यमुना नदी पर चली गई। भगवान् कृष्ण तो अन्तर्यामी थे। वह सब वृतान्त समझ गए। यशोदा माता जब जल लेकर आई तब अन्य गोपियों के साथ आनन्द मंगल की बातें करने लगी। भगवान् श्रीकृष्णको भूख लगी तो वह रोने लगे। परन्तु उनकी माता ने उनका रोने का शब्द नहीं सुना। तो रोते रोते भगवान् कृष्णने अपने पैर ऊपर को करके कोमल चरणों का ऐसा तीव्र प्रहार किया कि शकट के टुकड़े टुकड़े हो गए। भगवान् कृष्ण ने टूटे शकट को अपने पैरों की ठोकर से अलग फैंक दिया। यशोदा की दृष्टि अकस्मात् शकट पर पड़ी तब तो खंडित हुए शकट को देख कर वह अत्यन्त विस्मित हुई और शीघ्रता से अपने पुत्र को उठा लिया। परन्तु उसको यह तत्व मालूम नहीं हुवा कि गाड़ी अकस्मात् क्यों टूट गई। तब पास में खड़ी हुई गोपियां जो कि यह समस्त वृतान्त देख रही थीं कहने लगीं कि यह सब कर्म तुम्हारे पुत्र का है। इसी ने भूखे मरते अपने पैर की ठोकरसे इसके शकट को छिन्न भिन्न कर दिया है। इतने में नन्द जी बन से आ गए। उन्होंने शकट को अस्तव्यस्त पड़ा देख कर क्या मेरा पुत्र सकुशल होगा यह बात सोच कर डर गए आंखों में आंसू भर आए। परन्तु जब पुत्र को सकुशल देखा तो अत्यन्त प्रसन्न हुए और मन ही मन में बालक के अद्भुत पराक्रम का स्मरण करके आनन्दित होने लगे।

तृणावर्त्त

जब कंस ने देखा कि शकटासुर भी श्रीकृष्ण द्वारा परमधाम को पहुंचा दिया गया है और वह अपने कार्य में सफल मनोरथ नहीं हुवा तब उसने तृणावर्त नामक दैत्य जोकि पहले जन्म में एक बड़ा राजा था और दुर्वासा ऋषि के शाप से असुर योनि में उत्पन्न हुवा था अपने पास बुलाया और समझाकर कहा कि तुम अपने कार्य के साधन करने में बड़े चतुर हो अतः येन केन प्रकारेण कृष्ण का वध करो कंस की आज्ञा से तृणावर्त नित्य श्रीकृष्ण के वधका सुअवसर देखने लगा। एक दिन नन्दरानी श्रीकृष्ण को लाड़ लड़ा कर प्यार कर रही थी। उस समय तृणावर्त दैत्य बहुत वेगवान बवूले का रूप धर कर आया। उसके वेग से सब गोकुल धूरि से आच्छादित हो गया। उस धूलि के कारण सबकी आंखें मिच गईं। उस के घोर शब्द से समस्त दिशाओं में सन्नाटा छा गया। श्रीकृष्ण जी समझ गए कि तृणावर्त के वेष में तेरे वध करने की इच्छा से आया है। उन्होंने यह सोच कर कि यह यशोदा माता सहित तुझे आकाश में लेकर उड़ जायगा तो तेरी माताको कष्ट होगा अतः अपने शरीर का भार बढ़ाने लगे। उन के शरीर का भार इतना बढ़ गया कि यशोदा जी से सम्हारा ही नहीं गया। अब बोझ से अत्यन्त कष्ट होने के कारण उन्होंने कृष्ण को भूमि पर बिठा दिया और आप काम काज में लग गईं। कंस का अनुचर तृणावर्त खेलते हुए श्रीकृष्ण को भूमि से उठा कर आकाश में लेगया। यशोदा बालकृष्ण को उठाने को दौड़ी परन्तु कृष्ण का पता नहीं लगा। तृणावर्त ने कंकरी ठीकरियों की घोर वर्षा की जिस से सब बृजवासी घबड़ा गए। जब यशोदा को कहीं भी श्रीकृष्ण नहीं मिले तब अत्यन्त व्याकुल होकर मरे हुए बछड़े वाली गौ की भांति व्याकुल होकर भूमि पर गिर पड़ीं और तारस्वर से रुदन करने लगीं।

अब श्रीकृष्ण ने अपने शरीर का भार फिर बढ़ाना आरम्भ किया। यह भार बढ़ते २ इतना बढ़ गया कि तृणावर्त्त अब उस भार को आकाश में अधिक देर लेकर उड़ने में असमर्थ हुवा। तब तो वह श्रीकृष्ण चंद्र से छूटने की इच्छा करने लगा। परन्तु श्रीकृष्ण ने उनका कण्ठ इतने जोर से घोंटा कि वह चेष्टा हीन हो गया, नेत्र निकल पड़े, मुख से शब्द नहीं निकला। और वह प्राणहीन होकर श्रीकृष्ण सहित गोकुल में गिरा और जिस प्रकार महादेव जी के बाणसे त्रिपुरासुर भूमि पर गिरा था इसी प्रकार गिर कर चूर २ हो गया। श्रीकृष्णचंद्र पुनः उस दैत्य के हृदय पर आनन्द से किलोल करने लगे। तब गोपियों ने श्रीकृष्ण जी को देख कर गोद में उठा लिया। यशोदा ने भी श्रीकृष्ण को पाकर अत्यन्त आनन्द मनाया। और उस को दूध पिलाने लगी तब श्रीकृष्ण ने जम्हाई ली। उस समय यशोदा ने श्रीकृष्ण के मुखारविंद में समस्त संसार को देखा आकाश, स्वर्ग, पृथिवी, तारागण, सूर्य, चंद्रमा आदि समस्त विश्व को अद्भुत बालक के मुख में देख कर यशोदा अत्यन्त भयभीत हुई। माता यशोदा को भयभीत देख कर श्रीकृष्ण ने पुनः सौम्य रूप धारण कर लिया।

क्रमशः।

"भूमा"

हंसोपनिषद् ।

तम ने कहा, हे भगवन ! हे सर्व धर्मों के ज्ञाता ! हे सकल शास्त्र प्रवीण ! ब्रह्म विद्या का ज्ञान किस उपाय से प्राप्त होता है ? सनत्कुमार बोले, समस्त वेदोंके सारको विचार कर और जान कर जो मत शंकर भगवान् ने पार्वती जी के प्रति कहा है उसको तुम सुनो । हे गौतम ! यह मेरा मत किसी अनधिकारीको न कहना चाहिये, यह योगियों के लिये कोष वत् है । यह हंस की कृति का प्रबन्ध सुख तथा भोग और मोक्षका देने वाला है

अब हम शान्त जितेन्द्रिय और गुरुभक्त ब्रह्मचारी के प्रति हंस और परमहंस के निर्णय की व्याख्या करतेहैं जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि व्यापक है और तिलों में तेल व्यापक है उसी प्रकार से यह जीव हंस २ ऐसा सर्वदा ध्यान करता हुवा समस्त जीवोंमें व्याप्त होकर रहता है इसको जानकर मृत्युका अतिक्रमण करता है गुदाका अवष्टम्भन करके आधार चक्र से वायु का रेचन कर के स्वाधिष्टानमें तीन प्रदक्षिणा करके, मणि पूरकको प्राप्तहोकर और इसके पीछे अनाहत चक्रका अतिक्रमण करके विशुद्ध चक्र में प्राणों को रोकता हुवा और आज्ञा चक्रका ध्यान करता हुवा ब्रह्मरन्ध्रका ध्यान करे । मैं तीन मात्रा वाला हूं इस प्रकार सर्वदा ध्यान करे । इस प्रकार आधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त शुद्ध स्फटिक के समान जो नाद होता है वही ब्रह्म परमात्मा है ऐसा कहा जाता है ॥ १ ॥

हंस ऋषि है, अव्यक्त गायत्री छन्द है, परम हंस देवता है, 'यदं' यह बीज है, "स" शक्ति रूप है, "सोऽहं" यह कीलक है । इसी प्रमाण से ऋषि आदि छः संख्या द्वारा एक दिन रातमें इक्कीसहजार छः सौ बार श्वास लेते हैं ।

"सूर्याय सोमाय निरञ्जनाय निराभासाय तनु सूचं पूर्वोदयादिति अग्नि सोमाभ्यां वौषट्"

इस मंत्र द्वारा हृदयादि अंगन्यास तथा करन्यास करना । इसके पीछे अष्ट पत्र वाले हृदय कमल में हंसात्मा का ध्यान करना । स हंस के अग्नि तथा सोम पक्ष रूप हैं, ओंकार शिर है, विंदु नेत्र रूप हैं, रुद्र मुख रूप, रुद्राणी चरण रूप, दोनों बाहु काल रूप हैं, तथा अग्नि बाजू रूप है । सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म इस के दोनों पार्श्व रूप हैं । इस परम हंस का प्रकाश कोटि सूर्य के प्रकाश के तुल्य है । इस परम हंस से यह सम्पूर्ण व्याप्त है । इस की आठ पूकार की वृत्तियां होती हैं । पूर्व दिशा के पत्र पर बैठता है तब पुण्य में बुद्धि जुड़ती है । आग्नेय दिशा के पत्र पर बैठता है तब निद्रा तथा आलस्य होता है । दक्षिण दिशा के पत्र पर बैठने से क्रूर बुद्धि होती है, नैऋत दिशाके पत्रपर बैठनेसे पाप में बुद्धि जाती है पश्चिम दिशा के पत्र पर बैठने से क्रीड़ा करनेमें बुद्धि होती है । वायव्य दिशामें गमनादिक में बुद्धि होती है उत्तर दिशाके पत्र पर बैठनेसे विषय में प्रीति होती है । ईशान में द्रव्यादि का लोभ होता है जब मध्य में बैठता है तब इस लोक तथा परलोक में वैराग्य होता है । जब हंस पद्म के केसर पर जाकर बैठता है तब जागृत अवस्था आती है जब पद्मकी कर्णिका पर बैठता है तब स्वप्नावस्था होती है तथा जब मध्य प्रदेशके सूक्ष्म भागमें रहता है तब सुषुप्ति

अवस्था आती है। जब हंस पद्म का त्याग करता तब हंस तुरिया अवस्था को प्राप्त होता है। जब नाद में लीन होता है तब उसे तुर्यातीत, उन्मुनन, अजप्य तथा अपसंहार ऐसे नाम से कहते हैं। इस प्रमाण से सर्व भाव हंस के समान होता है। अतः मन में रहे हुए हंसका चिंतन करना योग्य है। जब १ करोड़ जप किए जाते हैं तब यह हंसनाद का अनुभव करता है इस का प्रमाण हंस के समान होता है। नाद दश प्रकार का होता है। १ चिण, २ चिंचिण, ३ घण्टा-नाद, ४ शंखनाद, ५ तन्त्रीनाद, ६ ताल नाद, ७ वेणु नाद, ८ मृदंगनाद, ९ भेरी नाद, १० मेघनाद, इस प्रकार के पूर्व की नौ नादों को त्याग कर दसवें नाद का अभ्यास करना चाहिए।

प्रथम नाद के अनुभव से गात्र चिनमिनाता है। द्वितीय नाद के अनुभव से गात्र का भंग होता है। तृतीय नाद के अनुभव से प्रस्वेद होता है। चतुर्थ नाद के अनुभव से शिरोकम्प, पञ्चम में तालु टपकता है, छटे के अनुभव में अमृत वृष्टि होती है, सातवें के अनुभव में विज्ञान होता है, आठवें में श्रेष्ठ वाणी होती है, नवें में अदृश्य विद्या तथा दिव्य नेत्र प्राप्त होते हैं और दशम के अनुभव में परब्रह्म-भाव प्राप्त होता है तथा ब्रह्मात्मा का साक्षात्कार होता है। मन उस हंस में लय होता है तथा संकल्प विकल्प का मन में लय होता है पीछे पुण्य तथा पाप का नाश होता है तथा वह हंस सदा शिवरूप से, शक्ति युक्त रूप से, सर्वत्र स्थिति कर्ता रूप से, स्वयं ज्योति रूप से, शुद्ध रूप से बुद्ध रूपसे अर्थात् ज्ञान रूपसे, नित्य रूप, से मायः सेरहित रूप से, तथा शास्त रूप से प्रकाशता है। इस प्रमाण में वेद वचन है, ऐसा वेद वचन है।

महात्माओं के वाक्य

दि तुम सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीचरणों की पूजा नहीं करते हो, तो तुम्हारी यह सारी विद्वत्ता किस काम की?

जो मनुष्य हृदय कमल के अधिवासी श्रीभगवान के पवित्र चरणों की शरण लेता है वह संसार में बहुत समय तक जीवित रहेगा।

धन्य है वह मनुष्य जो आदि पुरुष के पादारविन्द में रत रहता है। जो न किसी से प्रेम करता और न घृणा, उसे कभी कोई दुःख नहीं होता। जो मनुष्य प्रभु के गुणों का उत्साह पूर्वक गान करते हैं उन्हें अपने भले बुरे कर्मों का दुःखप्रद फल नहीं भोगना पड़ता।

जो लोग उस परम जितेंद्रिय पुरुष के दिखाए धर्म मार्ग का अनुसरण करते हैं वे दीर्घजीवि होंगे।

केवल वही दुःखों से बच सकते हैं जो इस अद्वितीय पुरुष की शरण में आते हैं।

धन-वैभव और इंद्रिय सुख के तूफानी समुद्र को वही पार कर सकते हैं जो उस धर्मसिंधु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं।

जो मनुष्य सकल गुणों से अभिभूत परब्रह्म के चरण कमलों में शिर नहीं झुकाता वह उस इंद्रिय के समान है जिस में अपने गुण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है।

जिन लोगों ने सब इंद्रिय सुखों को त्याग दिया है और जो तापसिक जीवन व्यतीत करते हैं, धर्मशास्त्र उनकी महिमा को और सब बातों से अधिक उत्कृष्ट बताते हैं।

तुम तपस्वी लोगों की महिमा को पा नहीं सकते ? यह काम उतना ही मुश्किल है जितना सब मुर्दों की गणना करना।

जिन लोगों ने परलोक के साथ इहलोक का मुकाबिला करके इसे त्याग दिया है, उनकी ही महिमा से यह पृथिवी जगमगा रही है।

जो पुरुष अपनी सुदृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा अपनी पांचों इंद्रियों को इस तरह वश में रखता है, जिस तरह हाथी अंकुश द्वारा वश में किया जाता है, वास्तव में वही स्वर्ग के खेतों में बोने योग्य बीज है।

जितेंद्रिय पुरुष की शक्ति का साक्षी स्वयं देवराज इंद्र है।

महान् पुरुष वही हैं जो असम्भव कार्यों का सम्पादन करते हैं और दुर्बल मनुष्य वे हैं जिस से यह काम हो नहीं सकता।

जो मनुष्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पांच इन्द्रिय विषयों का यथोचित मूल समझता है, वह सारे संसार पर शासन करेगा।

संसार भर के धर्म-ग्रंथ सत्यवक्ता महात्माओं की महिमा की घोषणा करते हैं।

त्याग की चट्टान पर खड़े हुए महात्माओं के क्रोध को एक क्षण भर भी सह लेना असम्भव है।

साधु प्रकृति पुरुषों ही को ब्राह्मण कहना चाहिए। वही लोग सब प्राणियों पर दया करते हैं।

हे मनुष्य ! अपने मनमें विचार कर और सोच कि तू किस लिए पैदा किया गया है।

अपनी शक्तियों का चिन्तन कर, अपनी आवश्यकताओं और अपने सम्बन्धों का चिन्तन कर, इस से तुझे जीवन के कर्तव्यों का पता लग जायगा, और तेरे सारे मार्गों में तुझे व्यवस्था मिलेगी।

जब तक तू अपने मन में अच्छी तरह न सोच ले, न तो कुछ बोल और न कोई काम कर। जो पग तू उठाए उसके परिणाम पर विचार करके उठा। इस से अपमान तुझ से दूर भागेगा, और लज्जा तेरे घर में घुसने न पावेगी. पश्चात्ताप तेरे निकट न आयेगा, और तेरे कपोल शोक का निवास स्थान न बनेंगे। वे समझ मनुष्य अपनी ज़बान को लगाम नहीं देता। जो जी में आता है बक देता है और अपने ही शब्दों की मूर्खता में फंस जाता है।

जो मनुष्य परिणाम पर विचार किए बिना सहसा कोई काम करता है वह उस व्यक्ति के सदृश है जो जल्दी में भागता हुवा बाड़ को फांद कर उस के दूसरी ओर गढ़ेमें जा गिरता है। इस लिए विचार की आवाज़ को कान देकर सुनो, उसकी बातें बुद्धिमत्ता की बातें हैं, और उसके मार्ग तुझे निर्विघ्नता और सत्यता तक पहुंचा देंगे।

तू कौन है जो अपनी बुद्धि पर इतना गर्व करता है ? अपनी योग्यताओं पर तू इतना घमण्ड क्यों करता है ?

यदि तू ज्ञानवान बनना चाहता है तो सब से पहले यह जान कि मैं अज्ञानी हूं, यदि तू दूसरों के निकट मूर्ख नहीं बनना चाहता तो अपने अभिमान

में अपने आप को बुद्धिमान समझने की मूर्खता मत कर।

लज्जाशील मनुष्य की भीरुता सच्चाई की शोभा बढ़ा देता है, और उस के शब्दों का आत्म सन्देह उसकी भूल को क्षमा कर देता है।

वह अपनी बुद्धि पर पूरा २ भरोसा नहीं करता, वह मित्र के परामर्श पर विचार करता है और उस से लाभ उठाता है।

जब उस की प्रशंसा की जाती है तो उसके कान बहरे हो जाते हैं और वह अपनी प्रशंसा को सच्ची नहीं समझता। वह अन्त काल तक अपने गुणों से अनभिज्ञ रहता है।

जिस प्रकार घूंघट से रूप बढ़ जाता है उसी प्रकार विनय रूपी यवनिका से उसके गुण चमक उठते हैं।

विपक्ष में दम्भी और अभिमानी मनुष्य को देखो, वह बहु मूल्य पोशाक पहनता है, बाजार में अकड़ कर चलता है, इधर उधर देखता जाता है और चाहता है कि लोग उसे देखें।

वह ऊपर को शिर उठा कर चलता है और गरीबों को घृणा की दृष्टि से देखता है। वह अपने मन में अपने आप को बहुत बड़ा समझता है, अपनी प्रशंसा सुनने और सारा दिन अपने ही गुण गाने में उसे आनन्द आता है।

वह आत्मश्लाघा से बहुत फूलता है परन्तु मिथ्या प्रशंसक उल्लू बना कर उसे खा जाता है।

जो समय बीतगया वह फिर लौट कर न आयेगा, और जो समय आने वाला है सम्भव है वह तेरे लिये न आवे, इस लिये तू वर्तमान से लाभ उठा, भूत के खोजाने पर खेद न कर, और भविष्य पर बहुत ज़ियादा भरोसा रख।

यह घड़ी तेरी है अगली घड़ी भविष्य के गर्भ में है, और तू नहीं जानता कि वह तेरे लिये क्या लावे?

जो कुछ तू करना चाहता है उसे फौरन करदे जो काम प्रातः हो सकता है उसे सायंकाल पर मत छोड़।

आलस्य दरिद्रता और दुःख की जननी है, परन्तु धर्मानुकूल परिश्रम करने से सुख की प्राप्ति होती है।

उद्योग से दरिद्रता भागती है, ऐश्वर्य और साफल्य पुरुषार्थी मनुष्य के सेवक हैं।

धन-सम्पति, मान प्रतिष्ठा, यश कीर्ति और राजकृपा किसको प्राप्त हैं? जो अनुद्योग को अपने निकट नहीं आने देता और आलस्य को कहता है "तू मेरा शत्रु है"

वह ब्राह्म मुहूर्त्त में उठता है और रात को वह चिन्तन से मन का और क्रिया से शरीर का व्यायाम करता है, और दोनों को तन्दुरुस्त बनाये रखता है।

आलसी मनुष्य अपने लिये आपही भार है, उसका समय सुगमता से नहीं बीतता, वह इधर उधर घूमता फिरता है और नहीं जानता कि क्या काम करे।

उसके दिन बादल की छाया की तरह गुज़र जाते हैं, वह अपने पीछे कोई स्मारक नहीं छोड़ जाता।

एक राजा ने एक कैदी को मारने का इशारा किया। बेचारे कैदी ने इस निराशा की दशा में बादशाह को गाली देना और कड़ी बातें कहना शुरु

किया। जो आदमी जान से हाथ धो बैठता है वह अपने दिल में जो कुछ होता है सब कह डालता है। आपत्ति के समय में जब भागने का कोई रास्ता नहीं रहता, तब आदमी तेज़ी तलवार के सिरे को मुट्ठी में पकड़लेता है। जब मनुष्य निराश होजाता है तब उसकी ज़बान बढ़ जाती है, जैसे बिल्ली निराश होकर कुत्ते पर झपटती है।

राजा ने पूछा यह क्या कहता है। तब एक सज्जन मन्त्री ने जवाब दिया कि "हेप्रभो यह कहता है, कि जो अपने क्रोध का दमन करते हैं और जो मनुष्यों पर क्षमा करते हैं उन परोपकारियों से परमेश्वर प्रेम करता है"।

राजा को दया आई और वह उसके खून से बाज़ आया। एक दूसरे मन्त्रि ने जिसका स्वभाव इस मन्त्रि से उलटा था कहा कि, "मनुष्यों को राजाओं के सामने सच के सिवा कुछ न कहना चाहिये। इसने राजा को गालियें दी हैं और अनुचित बातें कहीं हैं"। राजा ने इस बात पर क्रोध किया और कहा, "उसने जो झूठ बोला है वह मुझें तेरे इस सच बोलने से अधिक पसन्द आया। क्योंकि उस झूठ का रुझान नीति की ओर था, और इस सच की जड़ बुराई और दुष्टता पर है। बुद्धिमानों ने कहा है कि नीति युक्त असत्य विवाद कारी सत्य सत्य से अच्छा है जिन की कही राजा मानता है वह यदि नेकी के सिवाय कुछ कहें तो बड़ा अनर्थ होवे"।

हे भाई! यह दुनिया किसी आदमी के साथ नहीं रहती। संसार के कर्ता में दिल लगाओ और सन्तोष करो। इस दुनिया में अपना तकिया न बनाओ और अपनी पीठ न लगाओ क्योंकि इस दुनियां ने तुम्हारे ऐसे बहुत से मनुष्यों को पाल कर मार डाला है। जब पवित्रात्मा जाने का संकल्प करे, तो चाहे राज सिंहासन पर मृत्यु हो, चाहे धूल में सब बराबर है!

सत्यवान जाबालाख्यान

[ले० श्री० सूरजदेवी श्रीभगवद्भक्ति आश्रम]

उपनिषद् में ब्रह्मचर्यव्रत के विषय में एक कथा है।

सत्यकाम जाबाल ने अपनी माता से कहा हे मातः! मैं ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूंगी अतः मैं यह जानना चाहता हूं कि मैं किस गोत्रका हूं पहिले गुरु की सेवा करने को ब्रह्मचर्य व्रत कहते थे ब्रह्म नाम ज्ञान तथा वेद का है उसके प्राप्त्यर्थ जो चर्या (सेवा) करना है यही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। अथवा ब्रह्म जो सबका स्वामी ईश उस की प्राप्ति के लिये जो "अहं ब्रह्म" का ज्ञान उस ज्ञान का साधन है गुरु की सेवा करना। वेदका अध्ययन बाल्यावस्था में ही सम्यक् प्रकार से होता है अतः ऋषि महर्षियों ने मनुष्य की पहिली अवस्था ब्रह्मचर्यावस्था नाम करके वर्णन की है। इसी ज्ञान प्राप्ति के लिये सत्यकाम ने गुरु कुलमें रह कर गुरुकी सेवा करने का विचार किया। जब उसने अपनी माता से गोत्र पूछा (गोत्रपहिले पिताके नामको कहते थे) तब उसकी माताने कहा:-

हे पुत्र! मैं तेरा गोत्र नहीं जानती हूं क्योंकि मैंने तुझे यौवन अवस्था में प्राप्त किया है सो अधिक लज्जा होने के कारण मैं नाम नहीं पूछ सकी। अतः मैं नहीं जानती तू किस गोत्रका है। पहिले गुरु शिष्य

से गोत्र (पिता का नाम) पूछते थे अतः सत्यकाम ने कहा कि हे मातः ! मैं गुरु से क्या गोत्र बतलाऊं ? माता ने कहा कि मेरा नाम जबाला है और तेरा नाम सत्यकाम है सो तू यही कहना कि मैं सत्यकाम जाबाला हूं। वह हारिद्रुमत गौतम के पास आया और कहा।

ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेया भगवन्तामिति।

भगवन् ! मैं आपके पास ब्रह्मचर्य पूर्वक वास करूंगा। भगवन् ! क्या मैं आपके पास आऊँ।

तं होवाच किं गोत्रो नु सोम्यासीत।

उसने उसे कहा सोम्य ! तू किस गोत्रका है ? उसने उत्तर दिया भगवन् !

"नाहं एतद् वेद"

मैं यह नहीं जानता कि मैं किस गोत्रका हूं। मैंने अपनी माता से पूछा था, उसने मुझे यह उत्तर दिया कि यौवन अवस्था में मैंने तुझे प्राप्त किया है अधिक लज्जा वश नाम न पूछ सकी। सो मैं नहीं जानती, कि तू किस गोत्रका है ? हां मेरा नाम जबाला और तेरा नाम सत्यकाम है। हे भगवन् ! सो मैं जबाला का पुत्र सत्यकाम हूं।

"तं होवाच नैतद् ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति"

हारिद्रुमत ने कहा यह बात सिवाय ब्राह्मण के कोई सत्य नहीं कह सक्ता। ब्राह्मण का अर्थ है, ब्रह्म सत्य स्वरूप है अतः सत्य भाषण सत्याचरण करने वाला ही ब्राह्मण कहलाता है।

इस के पश्चात् सत्यकाम से ऋषिने कहा, ओ सोम्य समिधा लेआ। मैं तेरा उपनयन करूंगा।

प्राचीन समय में कोई गुरु तथा साधु के पास जाते थे तो अवश्य कुछ न कुछ भेंट लेजाते थे। पहिले प्रायः वनवासी ऋषि कुमार ही तत्वज्ञान लाभार्थ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते थे। अतः समिधा की ही अधिक प्रणाली थी। कबीरजी भी कहते हैं:-

खाली साधु न भेटिये सुन लीजे सब कोय,
कहे कबीरा भेट धरि जो तेरे घर होय।

पूर्व कालमें शिष्य बनने के आदि में तो समिधा अर्पण करते थे और शिष्य बनने के पश्चात् सर्वस्व अर्पण कर देते थे। यथा:-

कबीर शिष्य को ऐसा चाहिये गुरु को सर्वस देय

सत्यकाम के समिधा लाने पर गुरु ने उसका उपनयन किया। पश्चात् उसने गऊओं के समूह में से अति कृश, क्षीण, बलहीन चारसो गऊओं को पृथक् करके कहा कि हे सोम्य ! इनके पीछे २ चलो (इनको चराओ)। सत्य कामने मनमें विचारा कि।

"आचार्यःनियोगः शिष्येण सफली कर्तव्य"

आचार्यकी आज्ञा शिष्य को माननी चाहिये। और उसने गुरु की इच्छा को जान कर मनमें कहा कि ये जब तक हजार नहीं होंगी मैं वापिस नहीं लौटूंगा। जोशिष्य अपने गुरु के अभिप्राय को जान कर कार्य करते हैं वेही तत्व ज्ञान के अधिकारी हैं। और इन्हीं को आत्मा का प्रकाश होता है। किसी महात्माने कहा है:-

जो कोई समझे सैन में वासे कहिये बैन।
सैन बैन समझे नहीं वासे कछु न कहैन॥

पहिले शिष्य छल कपट से रहित शुद्ध तथा सरल अन्तःकरण वाले अनन्य श्रद्धा भक्ति वाले होवे थे। इसी लिये उनके लिये ब्रह्म का साक्षात्कार होना

कठिन नहीं था। जो भवसागर से पार करने वाले अपने गुरु में अनन्य श्रद्धा भक्ति रखते हैं उन्हीं को भगवान् के दर्शन हुये हैं और होंगे अन्यथा श्रम ही सत्यकाम ने गौओं को हांक लिया और उनके पीछे २ रहने लगा। गौओं की सेवा करते २ उसे बहुत वर्ष होगये। तब वायु देवता सत्य काम पर प्रसन्न हो गया और गौओं में रहे हुये वृषभ में प्रवेश करके बोलाः-

सत्यकाम ३ इति, भगवन् इति ह प्रतिशुश्राव। प्राप्ताः सोम्य! सहस्रं स्मः प्रापय न आचार्य कुलम् ॥

सत्यकाम! उसने उत्तर दिया "भगवन्" वृषभ ने कहा सोम्य! हम हजार होगये हैं, हमें आचार्य के घर लेचलो। तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगई है। और मैं तेरे लिये चतुष्कल ब्रह्म के एक पाद का उपदेश दूंगा। सत्यकाम ने कहा भगवन्! मुझे बतलाइये। वृषभने उससे कहा कि हे सोम्य! पूर्व दिशा एक कला है पश्चिम दिशा एक कला है, उत्तर दिशा एक कला है दक्षिण दिशा एक कला है। इन चार कलाओं वाला ब्रह्म एक पाद प्रकाशवान् (प्रकाशवाला) कहलाता है। जोविद्वान् इस प्रकार जानता हुआ ब्रह्म के इस चार कलाओं वाले पादको प्रकाशवान् नाम से उपासता है वह लोक में प्रकाश वाला होता है और प्रकाश वाले लोकोंको जीतता है। पश्चात् अग्नि तुझे ब्रह्मके एक पाद का उपदेश देगा यह कह कर वृषभ चुप होगया। तब प्रातः काल होने पर सत्य काम नित्य सन्ध्या बन्दन कर्म से निवृत्त होकर आचार्य के घर की तरफ चल दिया। जहां पर शाम हुई वहां पर गौओं को एकत्र करके रोक करके अग्नि को प्रज्वलित कर हवन किया, और अग्नि के पीछे पूर्वाभिमुख हो कर बैठ गया। अग्नि ने उसे कहा 'सत्यकाम' उसने उत्तर दिया 'भगवन्'।

"ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति"

अग्नि ने कहा 'सोम्य'! मैं तुझे ब्रह्म का एक पाद बतलाऊँगा। उसने उत्तर दिया:-

"ब्रवीतु, मे भगवानिति"

भगवन्! मुझे बतलाइये। अग्नि ने कहा पृथिवी एक कला है अन्तरिक्ष एक कला है द्यौ एक कला है, समुद्र एक कला है। यह ब्रह्म का चार कला वाला पाद अनन्तवान (अन्तरहित) नाम है। जो विद्वान् इस अनन्तवान् कला की उपासना करता है वह अनन्तवान् लोकों को जीत स्वयं अनन्तवान् होता है। 'हंस तेरे लिये एक पादका उपदेश देगा' यह कह कर अग्नि चुप होगया। प्रातः काल दूसरे दिन उसने नित्य कर्म करके गौओं को हांक दिया, और जहां सायंकाल हुआ, वहां उसने अग्नि जलाई और गौओं को रोक दिया, और अग्नि में समिधान किया और अग्नि के पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया।

तं हंस उपनिपत्याभ्युवाद ' सत्यकाम ३ इति,

तब हंस उड़कर उसके पास आया और कहा सत्यकाम! उसने उत्तर दिया 'भगवन्' हंसने कहा:- अग्नि एक कला है, सूर्य एक कला है, चन्द्रमा एक कला है, बिजली एक कला है। हे सौम्य! यह चार कलाओं वाला ब्रह्मका पाद ज्योतिष्मान् (ज्योति से पूर्ण) नाम वाला है। वह जो इस ज्योतिष्मान् कलाओं को यथार्थ जान कर उसकी उपासना करता है वह ज्योतिष्मान् लोकों को जीत स्वयं ज्योतिष्मान् हो जाता है।

" मद्गुष्टे पादं वक्तेति "

मद्गुतुके ब्रह्म का एक पाद और कहेगा । यह कह कर हंस चुप होगया । सत्यकाम ने दूसरे दिन प्रातः काल नित्य कर्म से निवृत्त होकर गौओं को हांक दिया, और जहां शाम हुई वहां गौओं को रोक दिया और अग्नि प्रज्वलित करके समिधान कर वह अग्नि के पूर्वाभिमुखहो बैठ गया। तब मद्गु बोला 'सत्यकाम' ! उसने उत्तर दिया भगवन् मद्गुने कहा सोम्य मैं तुम्हें ब्रह्मका एक पाद बतलाऊंगा, उसने कहा भगवन् ! कहिये मद्गु बोला प्राण एक कला है, नेत्र एक कला है, श्रोत्र एक कला है, मन एक कला है। हे सोम्य ! यह चार कलाओं वाला ब्रह्म का पाद आयतन वान (घरवाला) नाम है। वह जो इस प्रकार जानता हुआ ब्रह्म के इस चार कलाओं वाले पाद को आयतनवान् नाम से उपासना है। वह इस लोक में घरों का मालिक होता है और उन लोकों को जीतता है और वह स्वयं आयतनवान् बन जाता है। ऐसा कह मद्गु शांत हो गया । अब सत्यकाम आचार्य के घर पहुंचा। उसे आचार्य ने कहा कि हे सोम्य ! तुम्हारा मुख ब्रह्मवेत्ताकी तरह चमक रहा है। तुम्हें किसने उपदेश दिया है। उसने उत्तर दिया। हे गुरुजी ! मनुष्योंने मुझे उपदेश नहीं दिया है किन्तु देव ताओं ने दिया है। परन्तु भगवन् ! मैं चाहता हूं केवल आप ही मुझे उपदेश दें।

श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्ध ।
हैव विद्या विदिता साधिष्टं मापयतीति, ।

क्योंकि हे भगवन् ! मैंने सुना है आप जैसे महा पुरुषों से (गुरुओं से) जो विद्या, तथा उपदेश जाना गया है वही असली और कल्याण प्रद है। गुरुके बिना तत्व ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। वेद शास्त्र कोई कितना ही क्यों न पढा हो परन्तु गुरु के उपदेश के बिना यथार्थ लक्ष्य को नहीं पहुंचता है। यथा:-

वेद उदधि गुरु बिन लखे लागे लोन समान ।
बादर गुरु मुख द्वार है अमृत से अधिकान ॥

वेद समुद्र की समान खारी हैं वे जीव के लिये खारी नमक के समान हैं बादल रूपी गुरु मुख से वेही वेद अमृत से भी अधिक मीठे तत्व ज्ञान और उपदेश दे देते हैं। अत: मैं आपसे उपदेश सुनना चाहता हूं।

तस्मै हैतदेवोवाच अत्र ह न किंचन वीयायेति२

तब गुरु ने उसे वही विद्या सिखलाई और कहा यह बिलकुल ठीक है इसमें कुछ छोड़ा नहीं गया है यह विद्या पूर्ण है। और फिर शिष्य को जाने की आज्ञा देदी। इस गाथा से हमें ब्रह्मचर्य व्रत, आचार्य की आज्ञा मानना, सत्य बोलना, और गुरु मुख द्वार तत्वोपदेश आदि विषय का अति गंभीर उपदेश प्राप्त होता है और पूर्वजों की शैली का ज्ञान होता है कि राजकुमार ऋषिकुमारादि सबही आश्रमों में जाकर शिक्षा प्राप्त करते थे और गुरु की सेवा करते थे। भगवान् से प्रार्थना है पूर्ववत् शिक्षा का प्रचार होकर मनुष्य अपने शुभ मनोरथों को प्राप्त होते हुये सद्गति को प्राप्त होवें।

मानवधर्म सार।

नवमोऽध्यायः ॥

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतः ।
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥

(क्रम प्राप्त स्त्री पुरुष धर्म का आरम्भ करते हैं) धर्मयुक्त मार्ग में ठहरे हुए स्त्री और पुरुष के संयोग और वियोग में जो जो सनातन धर्म हैं वह कहूंगा ॥ १ ॥

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैःस्वैर्दिवानिशम् ।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे

अपने पुरुष (पिता पति पुत्रों) को चाहिये कि स्त्रियोंको किसी समय स्वतन्त्र न करे, और (रूप, रस, गन्ध आदि) विषयों में फंसती हुईयों को अपने वशमें टिकाए रक्खे ॥ २ ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति ॥

बालकपन में पिता रक्षा करता है, यौवन में पति रक्षा करता है, और बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करते हैं, स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥

भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ।
प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥४

स्त्री के रक्षित रहने पर प्रजा रक्षित रहती है और प्रजा के सुरक्षित रहने पर आत्मा की रक्षा होती है ॥ ४ ॥

पति र्भार्यांसंप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥

पति (वीर्य रूप से) अपनी स्त्री में प्रवेश करके गर्भ बनकर फिर वहां (पुत्र रूप से) उत्पन्न होता है ॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथा विधम् ।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥६

क्योंकि जैसे पुरुष को स्त्री सेवन करती है वैसे पुत्र को जनती है इसलिये सन्तान की शुद्धि के लिये स्त्री की प्रयत्न से रक्षा करे ॥ ६ ॥

पानं दुर्जन संसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट्

मद्य पान, दुर्जनों की संगति, पति से वियोग, इधर उधर घूमना, असमय में सोना और दूसरे के घर में वास, यह छः स्त्रियों को बिगाड़ने वाले हैं ॥ ७ ॥

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेण निम्नगा ॥८॥

जैसे गुण वाले भर्ता से स्त्री (विवाह) विधि अनुसार युक्त होती है, वैसे गुणों वाली वह होती है, जैसे नदी समुद्र से ॥ ८ ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥

नीच जाति में उत्पन्न हुई अक्षमाला वसिष्ठ से युक्त होकर और शारङ्गी मन्दपाल से युक्त होकर पूज्यता को प्राप्त भई ॥ ९ ॥

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः भर्तृगुणैः शुभैः ॥

यह तथा और भी नीच जन्मवाली स्त्रियें अपने २ पतियों के शुभ गुणों से इस लोक में उत्कर्ष को प्राप्त हुई हैं ॥ १० ॥

प्रजनार्थंमहा भागा पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चनः

उत्पत्ति के लिये बड़ा उपकार करने वाली (वस्त्र भूषणादिसे) पूजा के योग्य घर की शोभा हैं, स्त्रियें और श्री घरोंमें एक तुल्य हैं, इनमें कोई विशेष नहीं (जैसे श्री हीन घर शोभावाला नहीं होता वैसे स्त्री हीन भी) ॥ ११ ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परि पालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम् ॥

सन्तान का उत्पादन, उत्पन्न हुए का पालन, और प्रति दिन अतिथि मित्रादि के भोजन आदि लोक व्यवहार का स्त्री प्रत्यक्ष कारण है ॥ १२ ॥

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥

सन्तान धर्म के (अग्नि होत्रादि) सेवा उत्तम प्रीति तथा पितरों का और अपना स्वर्ग स्त्री के आधीन है ॥ १३ ॥

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥

पति से व्यभिचार से स्त्री लोकमें निन्दा को प्राप्त होती है, और पाप रोगों (कुष्ट आदि) से पीड़ित होती है ॥ १४ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्
क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥

(इस विवाद की मीमांसा करते हैं) स्त्री क्षेत्र रूप कही गई, और पुरुष बीज रूप कहा, गया है क्षेत्र और बीज के मेल से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है ॥ १५ ॥

बीजस्य चैव योन्या च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥

बीज और योनि में से बीज प्रधान कहा जाता है, क्योंकि सब भूतों की उत्पत्ति बीज के चिन्हों (रंग आकारादि) से चिन्हित होती है ॥ १६ ॥

यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥

जैसा बीज ठीक समय पर तैयार किये क्षेत्र में बोया जाता है, वैसा वह बीज अपने गुणों से चिन्हित उस (क्षेत्र) में उगता है ॥ १७ ॥

अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
यथा बीजं न वप्तव्यं न जातु परयोषितः ॥

इस (विषय) में भूतकाल के जानने वाले वायु से गाई गाथाएं गाते हैं, कि जैसे पुरुष को पराई स्त्री में बीज नहीं बोना चाहिये ॥ १८ ॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥

एक बार (भाइयोंका) विभाग होता है एक बार कन्या दी जाती है, एक बार देने का वचन कहा जाता है, यह तीनों सत्पुरुषों के एक बार होते हैं १९

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ।
क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥२०

जो बीज प्रवाह आन्धी द्वारा (कहींसे) लाया हुआ जिसके क्षेत्र में उगता है, वह बीज क्षेत्र वाले का ही होजाता है, बोने वाला फल नहीं पाता ॥ २० ॥

यस्या म्रियेतकन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ २१

जिस कन्या का वाणी से सत्य किया जानेपर

पति मरजाय, उसको इस विधि से अपना देवर विवाहे ॥ २१ ॥

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥

धर्म कार्य के लिये परदेश गये पुरुष की आठ वर्ष, विद्या (प्राप्ति) और यश (विद्या दान वा विजय) के लिये छः वर्ष, और उपभोग (मौज आदि) के लिये तीन वर्ष तक स्त्री प्रतीक्षा करे ॥ २२ ॥

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

चाहे कन्या ऋतुवाली होकर भी मरणपर्यन्त घर में रहे, पर इसे गुण हीन को कभी न दे ॥ २३ ॥

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

(पिता से न दी हुई) कन्या ऋतुमती होकर भी तीन वर्ष प्रतीक्षा करे। इस समय से पीछे अपने तुल्य पति को स्वयं वर ले ॥२४॥

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः

गर्भ ग्रहण करने के लिये स्त्रियें रची हैं, और गर्भ धारण के लिये पुरुष इस लिये (गर्भोत्पादन की तरह अन्याधानादि भी पुरुष का) धर्म श्रुतियें पत्नी के साथ कहा है ॥ २५ ॥

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ २६

मरण पर्यन्त (पति पत्नी का) परस्पर व्यभिचार नहीं हो, यह संक्षेप से स्त्री पुरुष का परमधर्म जानना चाहिये ॥ २६ ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः॥

बड़ा कुल को बढ़ाता है, बड़ा ही नाश करता है, (सो गुणवान) बड़ा लोक में पूज्यतम है बड़ा श्रेष्ठों से आनन्दित होता है ॥ २७ ॥

यवीयान् ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि।
समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥

छोटा भाई यदि बड़े भाई की स्त्री में से (नियोग विधि से) पुत्र उत्पन्न करे, वहां (चचा के साथ क्षेत्रजका) विभाग सम हो यह धर्म व्यवस्था है ॥ २८॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

पुत्र जिस लिये पुत् नामी नरक से पिता को बचाता है, इसलिये स्वयं ब्रह्मा ने (उसे) पुत्र कहा है ॥ २९ ॥

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा।
तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः॥

द्यूत और समाह्वय को जो करे, और करवाये उन सबको राजा ताड़े (अपराधानुसार पिटवाये वा हाथादि कटवावे) और द्विजों के चिन्ह धारी शूद्रों को भी ॥ ३१ ॥

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥

यह जूआ पूर्व समय में बड़ा वैर उत्पन्न कराने वाला देखा गया है, इसलिये बुद्धिमान पुरुष जी बहलाने के लिये भी जूआ न खेले ॥ ३२ ॥

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ।
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ३२

दण्ड का भी स्वामी वरुण है, क्योंकि वह राजाओं का भी दण्डधारी है, और वेदके पार पहुंचा ब्राह्मण सारे जगत् का स्वामी है ॥ ३३ ॥

रक्षणादार्य वृत्तानां कंटकानां च शोधनात् ।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥

सदाचारियों की रक्षासे और कांटों के शोधने से प्रजा पालने में तत्पर राजा स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमानः इव द्रुमः ॥

जिसके भुजबल का आश्रय लेकर देश निर्भय होता है, उसका देश सदा इस तरह बढ़ता जाता है, जैसे जल सेचन से वृक्ष ॥ ३५ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ।
यद्वापि प्रति संस्कुर्याद् दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥

तालाब के फोड़ने वाले को जलमें (डुबाने से) वा शुद्ध वध से मारे, यद्वा तालाब को फिर बनवा दे और उत्तम साहस (सहस्रपण) दण्ड दे ॥ ३६ ॥

कोष्ठागारायुधागार देवतागार भेदकान् ।
हस्त्यश्व रथहर्तृंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३६

(राजकीय) गोदाम घर, शस्त्रघर, और मन्दिरों के तोड़ने वालों और (राजकीय) हाथी, घोड़े, और रथों के चुराने वालों को बिना विचारे मारही दे ॥ ३६ ॥

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च ॥

पुल, ध्वज, लकड़ी और मूर्तियों का तोड़ने वाला उस हरएक वस्तु को नया बनवाये और पांच सौ दण्ड दे ॥ ३७ ॥

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥ ३८

थक २ कर फिर २ कामों को आरम्भ करे, काम करने वाले पुरुष को लक्ष्मी सेवन करती है ॥

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणिराजा हि युगमुच्यते ॥

सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलि यह सब राजा के बर्ताव हैं राजाही युग कहलाता है ॥ ४० ॥

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम् ।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥

सोया हुआ (निरुद्यमी पड़ा हुआ) वह कलि होता है, निरा जागता हुआ (जानकर भी न करता हुआ) द्वापर, कर्मों में उद्यत हुआ त्रेता और करता हुआ सत्ययुग होता है ॥ ४१ ॥

प्रविश्य सर्वभूतानि यथाचरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यः व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ४०

जैसे वायु सब जन्तुओं के अन्दर प्रवेश करके विचरता है, वैसे गुप्तचरों के द्वारा (सबके अन्दर) प्रवेश करे यह वायु का व्रत है ॥ ४२ ॥

यैः कृतः सर्वभक्षोऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान्

जिन्होंने अग्नि को सर्व भक्षी और समुद्र को अपेय (खारी) बना दिया, चन्द्र को क्षीण होने और पूरा होने वाला बना दिया, उनको प्रकुपित करके कौन नहीं नष्ट होगा ॥ ४३ ॥

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो देवतं महत् ॥
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥

जैसे स्थापन किया, और न स्थापन किया अग्नि बड़ा देवता है, इस प्रकार अविद्वान् ब्राह्मण बड़ा देवता है ॥ ४४ ॥

श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ ४५ ॥

जैसे तेजस्वी अग्नि श्मशानों में भी दूषित नहीं होता है, किन्तु यज्ञ में बुलाया हुआ फिर भी बढ़ता ही है ॥ ४५ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥

इस प्रकार यद्यपि सारे ही अनिष्ट कर्मों में वर्तमान हों, तथापि ब्राह्मण सर्वथा पूजनीय है, यह बड़े देवता हैं ॥ ४६ ॥

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः ॥ ४७ ॥

वेद के जानने वाले यशस्वी गृहस्थ ब्राह्मणों की सेवा ही शूद्र का परम कल्याणकारक धर्म हैं ॥ ४७

आयुर्वेद शिक्षा

(ले० श्री० पं० रामरक्षपाल वैद्य शास्त्री)

श्री सच्चिदानन्द आनन्द कन्द जगदीश्वर को कोटिशः धन्यवाद है जिस ने इस मनुष्य शरीर को उत्पन्न किया है, इस मनुष्य शरीर में इतनी शक्ति दे दी है कि जिस के द्वारा यह लौकिक धर्म, अर्थ, काम और पारलौकिक मोक्ष उपरोक्त चारों पदार्थों को प्राप्त कर सकता है ! परन्तु धर्मादि चतुष्टयपदार्थ सब ही प्राप्त हो सकते हैं। जबकि शरीर आरोग्य होवे कहा है:-

धर्मार्थ काम मोक्षाणा,मारोग्यं मूल मुत्तमम् ।
रोगास्तस्याप हर्तारः, श्रेयसो जीवितस्य च ॥

धर्मादि चतुष्टय पदार्थ का प्राप्त होना आरोग्यता पर ही निर्भर है। जिस के शरीर में आरोग्यता नहीं वह समस्त भूमण्डल का महाराजा होने पर तथा सर्व विज्ञानिधान रहने पर भी उपरोक्त चारों पदार्थों से वञ्चित रहता है और जीता हुवा भी मृतक के समान है। पूर्व काल में इसी भूमण्डल पर कैसे २ दीर्घायु बलिष्ट वीर पुरुष और वेद वेदांत के आद्योपांत सम्पूर्ण वेत्ता अनेक महर्षि हुए हैं जिन की विख्यात दिगन्त कीर्ति अब तक फैली हुई है। अहो ! शोक का विषय है कि वह आरोग्यता अब प्रति दिन नष्ट होती जा रही है। प्रति सैंकड़ा ५-७ मनुष्य ऐसे होवेंगे जोकि अपने को आरोग्य समझते होंगे अन्य किसी न किसी रोग मन्दाग्नि संग्रहणी, ज्वर, प्रमेह आदि व्याधिग्रस्त अवश्य ही होंगे। परन्तु जो अपने को आरोग्य समझते हैं पूर्ण आरोग्यता तो जैसी होनी चाहिए उन में भी नहीं है क्योंकि यदि पूर्ण आरोग्यता हो तो दीर्घायु १०० वर्ष तक जीवित रहने चाहियें। आज कल १०० वर्ष की आयु का प्रमाण है। " शतं जीवेम शरदः इत्यादि " परंतु आज कल तो देखनेमें आता है साधारण रोगों से ही ३०, ४० वर्ष में ही मनुष्य की मानव लीला

समाप्त हो जाती है। वृद्धावस्था के लक्षण तो सफेद बाल होना आदि १०-१५ वर्षकी अवस्थामें ही प्रतीत होने लगते हैं। यद्यपि बहुत से मनुष्य देखने में तो हृष्ट पुष्ट दिखाई पड़ते हैं लेकिन प्रायः देखने में यही आता है कि मिथ्या आहार विहारादि द्वारा किसी न किसी रोग से आक्रान्त अवश्य रहते हैं। हजारों में ५, ७ बेशक पूर्ण आरोग्य और दीर्घायु हों।

आयुर्वेद में दिनचर्या, रात्रिचर्या, आदि जो उपदेश रत्न भरे हुए हैं उन रत्नों का ज्ञान होने से और उनपर यथोक्त रीत्या चलने से तन्दुरुस्त रहता हुआ दीर्घायु होता है और धर्मादि चतुष्टय प्राप्त कर सकता है। वर्तमान समय में ही देखिए। भारत के मनुष्यों की अपेक्षा इंगलैंड के यूरोपियन इसी दिनचर्या आदि के आचरण से स्वस्थ्य रहते हुए कैसे २ अद्भुत कार्य यंत्र विद्याओं का आविष्कार कर रहे हैं जिन को यंत्र विद्याओं को देख कर आश्चर्य होता है। यद्यपि इनका कोई नवीन आविष्कार नहीं है। परंतु कालवश हमारी विद्या लुप्त प्राय होनेसे फिर इन्हीं के द्वारा प्रकट हुई है यह जो न्यूतन आविष्कार माना जाता है जैसे वायुयान (हवाईजहाज) का आविष्कार अब किया है। परन्तु हमारे यहां वायुयान का वर्णन पूर्व काल में ही रामायण में लिखा है कि रामचंद्र जी पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या आए हैं इत्यादि। अतः स्वास्थ्य रहने के लिए तथा परोपकार के लिए, प्रथम आयुर्वेद का ज्ञान होना आवश्यकीय है। आज कल प्रति दिन शारीरिक और मानसिक बल क्रम से घटता जा रहा है। मनुष्य अल्पायु निस्तेज सत्त्वहीन और रोगाक्रांत होरहे हैं। इसका मुख्य कारण क्या है ? इसका यही कारण है कि आयुर्वेद [वैद्यक विद्या] विषय में अनभिज्ञता। पूर्व समय में मनुष्यों को आयुर्वेद का ज्ञान होता था अतः खाना, पीना, चलना, फिरना आदि जितने भी कर्म हैं सब ठीक समय पर पूर्ण रीत्यानुसार होते थे। आज कल वैद्यक शास्त्रके न जानने से आहार विहार उचित तौर पर नहीं किए जाते हैं यह एक मुख्य कारण है। अतः मनुष्य मात्र को इस विद्या का ज्ञान होना चाहिए। बहुत से मनुष्य कह देते हैं कि, हमें वैद्यक सीखकर क्या वैद्य बनना है। यह समझना उचित नहीं। वैद्यक विद्या केवल वैद्यों के लिए ही नहीं है कि जो इस को पढ़ें या इस से आजीविका ही करें, और धन पैदा करें, बल्कि सर्वसाधारण स्त्री, पुरुष सब को ही इस विद्या का ज्ञान होना अत्यावश्यकीय है।

इस विद्या के ज्ञान से परोपकार भी बहुत अधिक होता है जोकि अगले अंक में लिखा जावेगा यहां क्रमशः संक्षिप्त से दिनचर्या ऋतुचर्यादि विविध शिक्षा प्रद लेख रहा करेंगे जिस को ध्यान से पढ़ कर लाभ उठावें।

तपस्विनी शाण्डिलिनी

एक समय गालव ऋषिने गुरुड़जी से सब दिशाओं और भूमण्डल पर पर्यटन करने इच्छा प्रकट की तब गरुड़जीने गालव ऋषीसे कहा कि तुम मेरी पीठ पर चढ़ जाओ मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार समस्त भूमण्डल की सैर करा दूंगा। गालव ऋषि गरुड़ जी पीठ पर चढ़ गये। अब गरुड़ जी बहुत द्रुतगति से से उड़ने लगे। वह इतने वेगसे उड़े कि गालव ऋषि

बहुत व्याकुल होगये वायु के वेगसे उनकी आंखें मिच गईं कान से शब्द सुनाई देना बन्द होगया। पश्चात् उन्होंने गरुड़ जी से कहा कि गरुड़ जी मैं बहुत घबड़ागया हूं: मुझे दिग्भ्रम होगया है, स्मृति भी नष्ट प्राय हो गई है: कहीं ब्रह्म हत्या न होजाय इसलिये आप पीछे को लौट चलिये। गरुड़जी ने गालव ऋषि को अत्यन्त घबड़ाया हुवा देख कर कहा कि इस ऋषभ नामक पर्वत पर विश्राम करके चलेंगे। वह दोनों उस पर्वतकी शिखरर उतर गये! वहां उन्होंने शाण्डिलिनी नामकी तपस्विनी ब्राह्मणी को देखा। गरुड़ ने तपस्विनी को प्रणाम किया और गालव ऋषि ने उनकी पूजाकी। पश्चात् उस तपस्विनी ने उन दोनों का स्वागत करके बैठने को कहा। तब वह दोनों आसन पर पर बैठ गये। उस तपस्विनी ने बलिवैश्वदेव करके मन्त्र से संस्कार किया हुवा भोजन दोनों को परोसा। दोनों जने उस भोजन को जीम कर तृप्त होगये और फिर अति परिश्रम के कारण निद्रा देवी के वशीभूत होगये। कुछ देरके अनंतर गुरुड़ जी आगे जानेकी इच्छा से जागे तो क्या देखा कि उनके शरीर पर पङ्ख ही नहीं हैं। उनका शरीर मुख और पैरों वाले मांस पिण्डवत् होगया। गालव ऋषि गरुड़जी को ऐसी हीनावस्था में देखकर अत्यन्त व्याकुल होकर गरुड़ जी से बोले कि हे गरुड़जी! आपने यहां आने का यह क्या फल पाया! आप के पङ्ख नष्ट होगये हैं। अब हमको यहां कितने ही दिन रहना पड़ेगा। आपने धर्म को दूषण करने वाला कौनसा खोटा विचार अपने मन में किया था? आप को यह किस खोटे पाप का फल में मिला है! इस पर गरुड़ जी खिन्न चित्त हो कर कहने लगे:-

इमां सिद्धाय पितो नेतुं तत्र यत्र प्रजापतिः॥
यत्र देवो महादेवो यत्र विष्णुः सनातनः।
यत्र धर्मश्च यज्ञश्च तत्रेयं निवसेदिति॥

हे ब्राह्मण! मैंने अपने मन में इस सिद्धा तपस्विनी को जहां प्रजापति हैं वहां लेजाने का विचार किया था। मैं ने चाहाथा कि जहां महादेव जी हैं, जहां सनातन विष्णु भगवान हैं और जहां धर्म तथा यज्ञ भी है वहां यह सिद्धा माँ भी रहे तो अच्छा है। हे ब्राह्मण! इस सिद्धाके तप के प्रभाव से, ऐसे विचार करनेपर मेरे पङ्ख नष्ट होगये हैं।

अब गरुड़ जी ने भगवती देवी को प्रसन्न करने की इच्छा से उनको प्रणाम किया और क्षमा याचना के पश्चात् उनसे कहा कि तुम यहां निर्जन पर्वत पर अकेली रहती हो ऐसा विचार कर मैंने तुम्हें उठाकर ले जाने का खोटा विचार किया था। मैंने जो इस प्रकार तुम्हारे चित्त को अच्छा न लगने वाला काम किया है अथवा मुझ से भला या बुरा जो कुछ भी काम बन गया है वह तुम अपने बड़प्पन की ओर ध्यान करके क्षमा करदो।

क्षमा बड़न को चाहिये नीचन को उत्पात।
कहा विष्णुको घट गयो जो भृगु मारी लात॥

इतना सुनकर वह सिद्धा गरुड़पर प्रसन्न हो कर कहने लगी, "हे गरुड़ तू डर मत, घबड़ाहट को त्याग दे तेरे पङ्ख अच्छे हो जायंगे। हे बेटा! तूने मेरी निन्दा की थी, उस निन्दा को मैं सह नहीं सकी थी। जो पापी मेरी निन्दा करता है वह तुरन्त ही पवित्र लोकों से गिर जाता है।

हीनयाऽलक्षणैः सर्वैस्तथाऽनिंदितया मया
आचारं प्रति एहन्त्या सिद्धिः प्राप्तेय मुत्तमा॥

मैं सब ही कुलक्षणों से रहित हूं, पाप रहित

है, सदाचार के ग्रहण करने से मैंने यह गति पाई है।

आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

आचार धर्म रूपी फल को देता है, आचार धन रूपी फल को देता है, आचार से पुरुष लक्ष्मी को पाता है और आचार कुलक्षणों का नाश करता है।

तदायुष्मन् खगपते यथेष्टं गम्यतामितः ।
न च ते गर्ह णीयाऽहं गर्हितव्याः स्त्रियः क्वाचित्

इसलिये हे आयुष्मन् पक्षिराज ! अब तू यहां से तेरी इच्छा हो वहां को चलाजा, तू मेरी निंदा न करना, क्योंकि स्त्री तो कदाचित् भी निन्दा की पात्र नहीं होती है, मैं तेरे ऊपर प्रसन्न होकर वरदान देती हूं कि "तू पहिले ही के समान बल और वीरता से युक्त हो जायगा। उस तपस्विनी के मुखार बिन्द से इस प्रकार के शब्द निकल ते ही उसकी तप स्चर्या के प्रभाव से गरुड़ जी के फिर पङ्ख निकल आये। इसकेपश्चात् उस ब्राह्मणी तपस्विनी ने उन दोनों को आनन्द पूर्वक जाने की आज्ञा प्रदान की।

भजन ॥ १

आनन्द मंगल गावो मोरी सजनी ।
भयो प्रभात बीत गई रजनी ॥ टेक
इदर निरन्तर फूली फुलवारी ।
तहां मेरी मनसा करै रखवारी ॥
बरषै नाम अमी फल लागे ।
पीवेंगे कोई सन्त सभागे ॥
कहत कबीर गूंगे की सैना ।
सतगुरु शब्द परख कर नैना ॥

२

तुम या धाम कहां रहो आली ॥ टेक ॥
हम कबहूं देखी न सुनी है,
यह शोभा छवि रूप निराली ।
नख शिख लौं शृंगार मनोहर,
अधर रची पानन की लाली ।
नारायण कहो प्रगट खोलके,
बात न राखो बीच बिचाली ।

३

कुब्जाने जादू डारा जिन मोहो श्याम हमारारी ॥ टेक
निशिदिन चलत रहत नहिं राखे ।
इन नयनन जल धारा री ॥
अब यह प्राण कैसे हम राखैं ।
बिछुरे प्राण अधारा री ।
ऊधो तब ते कल न परत है ।
जबते श्याम सिधारा री ॥
अबतो मधुवन जाय ले आवो ।
सुन्दर नन्द दुलारा री ॥
सूरदास प्रभु आन मिलावो ।
तन मन धन सब वारा री ॥

४

ऊधो कारे सभी बुरे ॥ टेक ॥
कारे की परतीत न करिये ।
कारे विष के भरे ॥
कारो अंजन देत दृगन में !
तीखी सान धरे ॥
नाग नाथ हरि बाहर आये ।
फण फण निरत करे ॥
कोयल के सुत कागा पाले ।

अपनो हि ज्ञान धरे ॥
पंख लगे जब उड़ने लागे ।
जाय कुटुम्ब रले ॥
सूर श्याम कारो मतवारो
कारे से काल डरे ॥

५

भरोसो कृष्ण को भारी ॥ टेक ॥
ग्राह ने गजराज घेरयो, बल कियो भारी ।
हार के जब टेर कीनी, धाये गिरधारी ॥ १ ॥
प्रह्लाद गिरसों डार दीनो, कीनी रखवारी ।
अगनि हूं सौं राख लीनो, दूसरी बारी ॥ २ ॥
द्रोपदी की लाज राखी, कूबरी तारी ।
ध्रुव को दीनी अटल पदवी, कियो बरवारी ॥३
विभीषण को लंका दीनी, रावण मारी ।
आगे पतित अनेक तारे, सूर की बारी ॥ ४ ॥

छन्द ॥ ६ ॥

जय नारायण ब्रह्म परायण, श्रीपति कमला कंतम् ।
नाम अनन्त कहां लग वरणों, शेष न पावत अंतम् ॥
नारद शारद शिव सनकादिक, ब्रह्माध्यान धरंतम् ।
मच्छ कच्छ सूकर नर हरि प्रभु, वामन रूप धरंतम् ॥
परशुराम श्रीरामचंद्र जग, लीला कोटि करंतम् ।
जन्म लियो वसुदेव देवकी गृह, नाम धरयो नंद नंदम्
बैठ पताल काली नाग नाथ्यो, फण २ निरत करंतम् ।
बल भद्र होकर असुर संहारे, कंस केश गहंतम् ॥
जगन्नाथ जगपति चिंतामणि, होय बैठे निश्चिंतम् ॥
कलियुग अंत अनन्त होकर, कलकी रूप धरंतम् ।
इस अवतार हरि जू के गाये, सूर शरण भगवंतम् ॥

७

नाथ तुम दीनन हितकारी ।
पतित पावन कलिमल हारी ॥ टेक ॥
प्रथम नरसिंहरूप धार्यो, नखन सों हिरण्यकुश मार्यो
ब्रह्मादिक थर थर करें, लक्ष्मी डिग नहीं जात ॥
जन अपने प्रह्लाद के, धर्यो शीश पर हाथ ।
भगत की विपति टरी सारी ॥ १ ॥
जुड़े दल दोऊ ओर भारी, करी जब भारतकी त्यारी ।
भरुही दीन हो पुकारी, खबर मेरी लीजो गिरधारी ॥
ऐसो को या जगत में, मेरो राखन हार ।
इतनी सुनत तब तुरत ही, गज घण्टा दियो डार ॥ ।
करी अण्डन की रखवारी ॥ २ ॥
सभा में द्रुपद सुता नारी, करने जो लगी जबाब भारी
देखते सकल धर्मधारी, कर्ण भीष्म, द्रोणाचारी ॥
कहा भयो वैरी प्रबल, जो सहाय बलबीर ।
दस हजार गज बल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर ॥
दुशासन बैठ गयो हारी ॥ ३ ॥
ग्राह ने गज को गह लीनो, परस्पर युद्ध बहुत कीनो ।
भयो गजराज को बल हीनो याद तब गोविंद को कीनो
सुनत हि टेर गजेंद्र की, उठ धाये ब्रजराज ।
सुध ना रही शरीर की, कियो भक्त को काज ॥
जनार्दन संतन हितकारी ॥४॥

८

रसिया रस जाने सोई ॥ टेक ॥
रसिया का रस गोरी जाने, और न जाने कोई ॥१॥
अधिकारी रसिया रस को है, ओंकार रस जोई ॥२
सामवेद में लिखा हुवा है, मुख्य पदार्थ दोई ॥ ३ ॥
चेतनाचेन ब्रह्म अरु माया, इन से सब कुछ होई ॥४

जन्म मरण ते मुक्त होय जब, मति ज्ञान से धोई ॥
रंसया गोरी एक भये जब, शेष रहा नहीं कोई ॥६

छन्द ९

श्री कृष्णजी के कमल नेत्र,
कटि पीतांबर अधर मुरली गिरिधरम् ॥ टेक
मुकुट कुंडल कर लकुटिया, सांवरे राधा वरम् ।
कूल यमुना धेनु आगे, सकल गोपियन मन हरम्
पीत वस्त्र गरुड़ वाहन, चरण नित सुख सागरम् ।
करत केलि कलोल निशि दिन, कुंज भवन उजागरम् ॥
अजर अमर अडोल निश्चल, पुरुषोत्तम अपरापरम् ।
गोपीनाथ गुपाल गिरधर, कंस हरनांकुश हरम् ॥
गल फूल माला विशाल लोचन, अधिक सुंदर केशवम्
वंशीधर वसुदेव छैया, बलि छल्यो हरि वामनम् ॥
जल डूबते गज राख लीनो, लंक छेयो रावनम् ।
सप्त द्वीप नौ खंड चौदा, भुवन कीने इक पलम् ॥
द्रौपदी की लाज राखी, कहां लौं उपमा करम् ॥
दीनानाथ दयालु पूरण, करुणामय करुणा करम् ।
कविदत्त दास विलास निशि दिन, नाम जप नित नागरम्

छन्द १०

प्रथम गुरु के चरण वन्दों, जासों ज्ञान प्रकाशतम् ॥
आदि विष्णु युगादि ब्रह्मा, सेवते शिव शंकरम् ।
श्रीकृष्ण केशव कृष्ण केशव, कृष्ण केशव केशवम् ॥
श्रीराम रघुवर राम रघुवर, राम रघुवर राघवम् ।
रामे कृष्ण गोविन्द माधव, वासुदेव श्री वामनम् ॥
मच्छ कच्छ वराह नर सिंह, पाहि रघुपति पावनम्
मथुरा में केशोराय विराजै, गोकुल बाल मुकुन्द जी ।
श्री वृन्दावन में मदन मोहन, गोपीनाथ गोविंद जी ॥
धन्य मथुरा धन्य गोकुल जहां श्रीपति अवतरे ।
धन्य यमुना नीर निर्मल, ग्वाल बाल सखा बने ॥
ग्वाल पाल संग सखा विराजे, संग राधा भामिनी ।
वंशी तट निकट यमुना, मुरली की टेर सुहावनी ॥
कृष्ण कलिमल हरण सबके जो भजें हरि चरण को ।
भक्ति अपनी देहु माधव, भवसागर के तरण को ॥
जगन्नाथ जगदीश स्वामी, बदरीनाथ विश्वम्भरम् ।
द्वारका के नाथ रघुपति, केशवं करुणा करम् ॥
कृष्ण अष्ट पदी की धुन सुन, कृष्ण लोक सगच्छतम्
गुरु रामानन्द नीमानन्द स्वामी, कवि दत्तदास समाप्तम्

गोत्व मीमांसा ।

[ले० श्री० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, जबलपुर ।]

इस समय जो भारतवासी, अंगरेजी भाषा स्वरूप नौका द्वारा शिक्षा समुद्र के पारगामी बने हैं, वे संसार तत्व से चूड़ांत पंडित हैं, वा प्राचीन भारत के व्यास वशिष्ठादि संसार तत्व के पारगामी पंडित थे । इसका निर्णय करना विद्या स्नात साक्षर सज्जनों का ही काम है । मुझ जैसे अल्पज्ञका निर्णय न तो उचित ही समझा जायगा और न स्वीकृत ही किया जायगा । हां, अपनी अल्पविद्या की सहायता से मैं इतना अवश्य कह सकता हूं कि इस समय जिन उपायों द्वारा पाश्चात्य जगत् के सुधी लोगों ने अपने देशों की उन्नति की है, वे सब के सब व्यास, वाल्मीकि, वशिष्ठ, विदुर, शुक्र और चाणक्य आदि द्वारा कहे हुए देशोन्नति के उपायों में पाए जाते हैं । इसे भारत के खोटे दिनों का कुफल ही मान लेना

चाहिए कि वर्तमान भारतीय विद्वानों द्वारा कहे हुए देशोन्नति के उपायों पर विचार कर उन्हें देश काल वर्तमान के समान ढाल कर उन से दास लेना बन्द कर दिया। आज कल जो भारत वासी अपने को राजनीति और देशोत्कर्ष नीति के 'यत्परो नास्ति' विद्वान मानते हैं, वे महाभारत के सभापर्व में कही हुई नारद नीति को मनन पूर्वक पढ़ कर उसे हृदयङ्गम करें तो उन्हें ज्ञात हो सकता है कि भारत के पुनरुत्थान के लिए वे जो उद्योग कर रहे हैं, उस में उन की प्रचण्ड भूल कहां पर है। पाश्चात्य लोगों ने उस भूल पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर अपने देशों का उद्धार और उत्कर्ष किया है।

श्री व्यास जी और उनके ब्रह्मलीन पुत्र शुक स्वामी अपने समयके राजमान्य पण्डित थे। वे जिस चक्रवर्ती राजा की सभा में जाते थे, उसे उन का यथेष्ट आदर सत्कार करना ही पड़ता था। उस समय के इतने धुरंधर विद्वान् जिस गो तत्व पर मीमांसा किया करते थे, उसे आज कल के भारतीय विद्वानों ने इस प्रकार भुला दिया है मानो गोवंश से और भारत की उन्नति से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। भारतीय विद्वान न तो राष्ट्र सभा में ही गो तत्व पर विचार करना आवश्यक समझते हैं और न सनातन धर्म सम्मेलन वा हिन्दू महासभा के अधिवेशन में ही। भारतीय विद्वानों को चाहिए कि वे इस बात को ध्रुव सत्य मान लें कि गो धन के साधन के सुधार से देशोन्नति का गहरा सम्बन्ध न होता तो पाश्चात्य जगत् के वर्तमान देशभक्त अपने देशके गोधन का सुधार और वृद्धि करने में करोड़ों रुपया कभी खर्च नहीं करते। जो भारतीय भारत के सरस्वती के कोष को भरने के लिए पाश्चात्य देशों के विद्या पीठ पर जाया करते हैं, वे वहां के गोधन की परिपालन परिपाटी को भले ही अधीत न करते हों, पर इस बात की ओर उनका ध्यान अवश्य ही जाता है कि इस समय वहां की तपस्विनी गौवें जितना सुस्वादु और अधिक दूध देती हैं, वैसा दूध उन्हें उन के घर भारत में नहीं मिलता। भारत लौटने पर इस स्पष्टोक्ति को कह कर ही वे अपने कर्तव्य क्रम की इतिश्री कर देते हैं। भारत आने पर वे समर्थ होने पर भी, इस बात की थोड़ी सी भी चेष्टा नहीं करते कि क्या भारत की गौवें भी इस प्रकार का और उतना दूध दे सकती हैं? दे सकती है तो किस उपाय से?

श्रीशुक स्वामी किस कोटि के विद्वान् थे इस बात को आधुनिक संस्कृत के विद्वान् जानते ही होंगे, शुक स्वामी ने अपने पूज्यपाद पिता व्यास जी से एक दिन निम्नलिखित प्रश्न किया।

पवित्राणां पवित्रं च, यत् तत् ब्रूहि पितुर्मम।

अर्थात् हे पिता जी! इस संसार में मनुष्यका परम हित करने वाला जो पवित्रतम तत्व हो, उस का मुझे उपदेश दीजिए।

पुत्र वत्सल व्यास जी ने उक्त प्रश्न के उत्तर निम्न लिखित वाक्य कहा:-

गावः प्रतिष्ठा भूतानां, तथा गावः परायणम्।
गावः पुण्याः पवित्राश्च, गोधनं पावनं तथा॥

अर्थात् इस संसार के प्राणी मात्र की स्थिति तथा उन्नति का मूलाधार गोवंश ही है। अतः उन से बढ़ कर प्राणियों का उपकार करने में अन्य कोई समर्थ नहीं है। तात्पर्य गोवंश से बढ़ कर अन्य पवित्र नहीं है।

महात्मा व्यास गोवंश की उक्त प्रशंसा सुना कर ही चुप नहीं हो रहे। उन्हों ने शुकस्वामी से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि गोकुल से प्राणी मात्र का उपकार तभी सिद्ध होता है जब मनुष्यगण गोकुल का यथोचित्त परिपालन करते हैं। यथा:-

गाश्च शुश्रूषते पश्वं, समन्वेति च सर्वशः ।
तस्मै तुष्टा प्रयच्छंति, वरानपि सु दुर्लभान् ॥

अर्थात् गोवें उसी को अभीष्टफल देती हैं। जो उनकी यथा विधि सेवा कर उन्हें सब प्रकार संतुष्ट और प्रसन्न रखता है।

आज कल जो गो भक्त लोग गौकी चन्दन, अक्षत और पुष्पादि से पूजा कर उसे गो सेवा मान लेते हैं, उन को गोसेवा का भ्रम न हो जाय, इस अभिप्राय से व्यास जी कहते हैं कि गौओं के चरने, पानी पीने और रहने आदिके लिए यथोचित व्यवस्था करना ही उनकी यथार्थ सेवा और पूजा है।

यस्याः लोकाः सहस्राक्ष सर्व काम समन्विताः ।
न तत्र क्रमते मृत्यु र्न जरा न च काल कः ॥
न देवं नाशुभं किंचिन् विद्यते तत्र वासव ।
तत्र दिव्यान्यरण्यानि दिव्यानि भवनानि च ॥
यत्र वृक्षा मधुफला दिव्यपुष्पफलोपगाः ।
तरुणादित्य संकाशैः भांति यत्र जलाशयाः ।

अर्थात् गौओं के रहने के लिए जो स्थान बनाया जाय उन में उनके चारे दाने की वे सब चीजें इतनी मात्रा में रखी जांय कि, जब जिस की आवश्यकता हो मिल जाय। उनका परिपालन इस उत्तमता के साथ किया जाय कि उन्हें असमय में न तो बीमारी ही प्राप्त हो न मृत्यु हो। उन के चरने के लिए उपयुक्त वन, पानी पीने के लिए शुद्ध और पवित्र जलवाले जलाशय रखे जांय

उक्त विवरण को सुनकर तेजस्वी महात्मा शुक स्वमी जी ने जो किया उसे भी पाठक पढ़ लें।

इत्युक्तः स महातेजः शुकः-पित्रा महात्मना !
पूजयामास गां नित्यं तस्मात्वमपि पूजय ॥

अर्थात् श्री शुक स्वामी ने विद्या स्नात पिता व्यास जी से गो तत्व को उक्त प्रकार सुनकर नित्य गोपरिपालन करना आरम्भ कर दिया। धन्य, शुक स्वामी तुम धन्य हो। अहो ब्रह्म अनिर्वचनीय ब्रह्म सुख का अनुभव करते हुए भी तुम ने सर्वसाधारण की हित कामना के लिए गोपरिपालन किया।

इस समय जो भारत नेता, पण्डित, उपदेशक महोपदेशक, राजा महाराजा, जमींदार और सेठ, साहूकार, सभापति और वक्ताके पद से गोरक्षा पर अभिभाषण वा व्याख्यान सुनाते हैं, वे श्रोता आपसे यही कहते हैं कि कोई हिंदू अहिन्दू के हाथ गौ न बेचे और अपने घर गौ पाले। श्रोता लोग सभापति जी से वा वक्ता जी से उपदेश पाते हैं उसे सभा-भवन में ही उनके श्री चरणों में भेंट कर आप कोरे अपने घर जाते हैं। यही कारण है कि गोरक्षा के विषय में इतने लेख अभिभाषण और व्याख्यान सुनने परभी गोरक्षा नहीं कीजा सकती। गोवध बढ़ता ही जाता है।

जिन राजा, महाराजाओं, जमींदारों, सेठ, साहूकारों को अपने राज्य जमींदारी, और महाजनों को बद्धमूल और चिरस्थाई बनना हो उन्हें उचित है कि वे महात्मा शुकस्वामी के समान गोपरि-पालन का प्रबन्ध करें। कोरी व्याख्यान बाजी से गोरक्षा नहीं होगी। भारत का कल्याण गोरक्षा में ही है। यह ध्रुवसत्य है। और यही गोतत्व की यथार्थ मीमांसा है।

निम्न लिखित महानुभावों ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. भक्त नन्दकिशोर जी वर्मा दादरी १११)
२. राय साहब श्री वल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट पटना १०१)
३. राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला १०२)
४. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर १०१)
५. राय बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)
६. श्रीमान् राय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)
७. राव श्रीराम रईस नांगल २५)
८. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)
९. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)
१०. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)
११. बा० स्वरूपचन्ददास जी बी० ए० इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)
१२. श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)
१३. सेठ बनवारी लाल जी लोहिया, चावड़ी बाज़ार दिल्ली। २५)
१४. चौ० नेतराम साहब गिरदावर हलका जाटूसाना जिला गुड़गांवा। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्युनिस्पल कमेटी पलवल। ११)
२. श्रीमती उमरावकौर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)
३. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
४. बा० ब्रजलाल जी सिरश्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, झींद। ५)
५. राव बलवन्तसिंह जी मु० कैलपुर तहसील रेवाड़ी। ५)
६. श्रीमती सूरज देवी धर्म पत्नी चौ० जोरावरसिंह जी सिशन जज अलीगढ़। ५)
७. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
८. श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'गौड़' क्लार्क इलाहाबाद बैंक देहली। ५)
९. ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर। ५)
१०. ला० भगवान दास जी, अ० हिड क्लर्क सेक्रेटरी इजलास खास आफिस संगरूर ५)
११. महन्त महाशयानन्द जी मन्दिर चरणदास मकान बल्लीमारान दिल्ली ५)

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ||)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य ―)|||

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य |―)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य ―)||

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय हैं फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथक्कड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ||≈) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संग्रह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ बाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उत्तम कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य |≈)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।